प्रकाशक—
सत्यदेव वर्मा बी. ए., एल-एल. बी.,
मयूर-प्रकाशन, झांसी ।

प्रथमबार १९५२



मूल्य १।) रुपया

मुद्रक—
द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'
स्वाधीन प्रेस, झांसी ।

# कलाकार का दण्ड

# कलाकार का दण्ड

अन्तक यवन था—यूनानी। अपने पिता के समय से उज्जयिनी का निवासी था, स्थापत्य और वास्तु कला का जानकार। परन्तु उसकी बनाई हुई मूर्तियां बिकती बहुत कम थीं। इसलिये वह जङ्गली पशुओं के प्रतिबिम्ब बना बनाकर अपना जीवनयापन करने लगा। तो भी सुन्दर स्त्री-पुरुषों की मूर्तियां बनाने की कामना बिलकुल कुण्ठित नहीं हुई थी। उसने अपने बचे-खुचे समय में से अवकाश निकाल निकाल कर अपने देवता, अपोलो, की पीतल-मूर्ति बनाई। पीतल को उसने ऐसा चमत्कार दिया कि वह स्वर्ण-सा मालूम पड़ता था। विक्रमादित्य के कान तक इस मूर्ति की प्रशंसा पहुँच गई।

मूर्ति के शरीर की गठन, अवयवों की माँसपेशियों, रग पट्ठों तथा नस-नाड़ियों का अनुपात तथा उठाव उभाड़ और गर्त गड्ढे ऐसे सुडौल और बाल बाल सच्चे थे कि उसकी यथार्थमूलक कला में कोई भी जानकार भ्रम नहीं कर सकता था। वह मूर्ति अन्तक को इतनी प्यारी लगी कि उसने बेचने की कल्पना का नितान्त परित्याग कर दिया। परन्तु सुजान और अजान सभी को उसका प्रदर्शन कराना उसके अवकाश के समय की एक वासना सी हो गई। लोग आते, देखते रहते और चले जाते, सराहना करते करते।

( २ )

एक दिन एक मैले-कुचैले से व्यक्ति को उस मूर्ति ने असाधारण समय तक के लिये अन्तक के निवास स्थान पर, जहाँ अपोलो की मूर्ति का प्रदर्शन होता था, रोक लिया । उस दिन अन्तक को भी अवकाश था । जब यह आगन्तुक देर तक उस मूर्ति का निरीक्षण करने के उपरान्त भी लालच भरे नेत्रों से उसको देख रहा था अन्तक ने पूछा—'आप क्या मूर्तिकार हैं ?'

उत्तर मिला—'हां, हूँ ।'

अन्तक ने कहा—'उज्जयिनी के नहीं हो । यहां के तो लगभग सभी मूर्तिकारों को मैं जानता हूं ।'

आगन्तुक—'मैं बाहर से आया हू । आपकी इस मूर्ति की प्रशंसा सुनकर चला आया । बड़ी कुशलता से बनाई गई है । आपको एक उपकरण ने सहज सहायता दी है ।'

अन्तक—'वह कौन सा ?'

आगन्तुक—'सोना मुलायम धातु है । उसी पर आपने काम किया है ।' आगन्तुक अपनी सूक्ष्म आलोचना पर मन ही मन सन्तुष्ट था । अन्तक को इस कलाकार के अज्ञान पर एक क्षण के लिये विस्मय हुआ फिर तुरन्त परिहासवृत्ति ने उसको प्रेरित किया । बोला, 'आर्य, है तो अवश्य यह सोना, परन्तु सोने की मूर्ति का बनाना उतना ही कठिन है जितना अन्य धातुओं की मूर्ति का बनाना ।'

आगन्तुक—'मैं आर्य नहीं हूँ । मैं तक्ष हूँ और मेरा नाम शंख है । आप कौन हैं ?'

अन्तक—'मैं यवन हूं । भारतवर्ष में कई युग हो गये । मेरे पिता उज्जयिनी आये थे । मेरा नाम अन्तक है । आपकी कला का नमूना देखना चाहता हूँ ।'

शंख—दिखलाऊँगा। अभी लाता हूँ। मैं पत्थर और लकड़ी पर काम करता हूं।'

अन्तक—'लकड़ी पर काम करने की प्रथा तो अब यहाँ से उठसी गई है?'

शंख—'हाँ, लगभग। धातु की अपेक्षा लकड़ी और पत्थर पर काम करना दुस्साध्य है।'

अन्तक ज़रा मुस्कराया। शंख को अच्छा नहीं लगा। बोला, 'मैं अपनी बनाई मूर्ति लाता हूं। देख लो और फिर शिलाखण्ड पर काम करो। मेरे वर्ग में धातु पर काम करना वर्जित है, नहीं तो कर के दिखला देता।'

अन्तक शंख को रुष्ट नहीं करना चाहता था। वह शंख निर्मित शिला-मूर्ति को देखने के लिये लालायित हो उठा। उसने भारतीय करीगरों की बनाई अनेक मूर्तियां, जालियां और प्रतिमायें देखी थीं, इसलिये शंख का उद्गार केवल अहंकार सा अवगत हुआ। तो भी यह सोचकर कि शंख की टाँकी और हथौड़ी में शायद कुछ विशेषता निकले, संयम करके रह गया। मूर्ति ले आने के लिये आग्रह करते हुये अन्तक ने कहा—'यदि मूर्ति बोझिल हो तो आपके घर चलूँ?'

शंख ने निषेध किया और द्रुतगति से चला गया। अन्तक उसकी अपेक्षा करने लगा।

( २ )

शंख शीघ्र ही लौटा। एक श्वेत परिधान में छोटी सी मूर्ति लपेटे मुस्कराता हुआ आया। अन्तक मूर्ति को देखने के लिये उत्कंठित हो रहा था। परिधान को हटाकर शंख ने मूर्ति संभाल कर रख दी। अन्तक उसको बारीकी के साथ परखने लगा।

मूर्ति चतुर्भुजी विष्णु की थी। अंग-उपांग सभी सुडौल थे। अनुपात में बाल बराबर भी कहीं वैषम्य न था। ओठों के किनारों पर एक बहुत बारीक मुस्कराहट खेल रही थी और आँखों में विशाल मृदुलता भी थी, जैसे वरदान के लिये छलकी पड़ रही हो। अन्तक ने देर तक निरीक्षण किया। अन्त में बोला—'तक्ष शंख, तुम्हारी इस प्रतिमा में एकाध बात विलक्षण होते हुये भी शेष सब बहुत साधारण है।'

शंख खिन्न और क्षुब्ध हो गया, परन्तु उसको अपनी कृति पर परम सन्तोष था और बहुत अभिमान। इसलिये उसने क्षोभ को पराभूत कर लिया। कहने लगा—'यवन अन्तक पहिले यह बतलाओ इस प्रतिमा में तुमने विलक्षण क्या देखा और फिर इसमें साधारण क्या है वह तो कहोगे ही।'

अन्तक ने उत्तर दिया—'कुशल तक्ष, पत्थर की मूर्ति के ओठों पर ऐसी मुस्कराहट और आंखों में ऐसी मिठास बहुत ही कम देखी। आप बौद्ध नहीं हो ?'

शंख—'नहीं, मैं वैष्णव हूं; अहिंसा का पुजारी नहीं हूं, दोनों हाथों से अमित बर लुटाने वाले विष्णु का भक्त हूं।'

अन्तक—'विष्णु चक्र चलाते होंगे तो क्या ऐसे ही कदली खंभ जैसे सुते हुये हाथों से ? बलिष्ठ भुजा की पेशियाँ और रगें तो अलग-अलग उठी और उभड़ी हुईं दिखलाई पड़नी चाहिये।'

शंख—'कैसी यवन ?'

अन्तक—'मेरा हाथ देखो। मैं अपने देश का व्यायाम करता हूं। वज्र मुष्टि कर लेने पर मेरी भुजा का प्रत्येक उपांग लोहवत हो जाता है और प्रत्येक उपांग का सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग, आँख से देखा जा सकता है और हाथ से टटोला जासकता है। हमारे देश के कारीगर तो स्त्रियों के भी ऐसे प्रतिबिम्ब नहीं बनाते। प्रबल और बलिष्ट पुरुषों की आपके देश में काफ़ी बहुतायत है। नमूनों की कमी नहीं। हमारे देश में तो

शरीर के बारीक से बारीक और छोटे से छोटे ब्यौरे और डोरे को चित्र तथा मूर्ति में दिखलाते हैं। इस तरह की मूर्ति का तो हमारे देश में शायद ही कुछ मूल्य लगे—निस्सन्देह यह मुस्कराहट और मृदुलता आश्चर्यजनक है। जान पड़ता है आपके आचार्यों ने जैसा पुस्तकों में लिख दिया है वैसा ही अनुसरण करते चले जाते हो। कुछ अपनी निज की भी व्युत्पत्ति रखना चाहिये।'

शंख—'यवन आपके यहाँ भी आचार्य हुये होंगे और उन्होंने भी अनुभवों के निष्कर्ष रूप कुछ साधारण नियम निर्धारित किये होंगे। इसलिये दम्भ की बात मत कहिये। हमारे आचार्यों ने जो कुछ कहा है वह बड़ी लम्बी तपस्या के बल पर और सार्वभौम कल्याण की दृष्टि से।'

अन्तक ने समझा शंख परम्परा का वृथाभिमान कर रहा है। बोला—'तच्च, जब आप शिलाखण्ड को प्रतिमा में परिवर्तित करने लगते हैं तब आपकी आंख कहां चली जाती है? क्या आपके मत में शरीर की नसों रगों और भिन्न भिन्न पेशियों का उत्कीर्ण करना अनावश्यक है? तब कला का सौन्दर्य कहाँ है? आपकी बनाई हुई इस मूर्ति में आँखों और ओठों को छोड़कर बाकी अङ्गों में अनुपात का सौष्ठव होते हुये भी सूक्ष्मता का गौरव कहीं भी नहीं है।'

शंख के भारतीय रक्त में साहित्य का अलंकार विशाल मात्रा मे था। कहने लगा, 'यवन हमारी दृष्टि भीतर के अंग और उपांग अधिक देखती है, बाहर के अपेक्षाकृत कम। कमल के भीतर का पराग और मधुर मधु भ्रमर भीतर जाकर ही भोग सकता है। ऊपर से टटोलने वाले का हाथ भटका चाहे जितना करे सम्पर्क की स्निग्धता का सुख भले ही उसको प्राप्त हो, परन्तु भीतर का अमृत उसे नहीं मिलेगा।'

अन्तक के देश के साहित्य में भी अलंकारों की कमी नहीं थी। बोला, 'शंख, उपवन और उद्यान के रंग-बिरंगे फूलों को देखते हुये

भी तुम नहीं देख पाते। कुसुम की सुडौल गठन, सुन्दर रूप रङ्ग देखा और मन ने बाँध लिया; चिड़िया की चहक और स्वर–मण्डल की तान कान पर आई और हृदय ने बाँध ली। आपके लिये तो रूप, रङ्ग, महक, चहक, रस और तान सब एक भाव हैं, आप जब कील और हथौड़ी साधते हैं तब कहां देखा करते हैं ?

शंख ने तुरन्त ताव के साथ उत्तर दिया, 'आकाश की ओर। आकाश के सूर्य और चन्द्रमा की ओर। आकाश के झिलमिलाते हुये तारों की ओर। रूप बना और बिगड़ा; महक आई और चली गई। चहक और तान एक क्षण के लिये ठहरीं और चली गईं।'

अन्तक ने टोककर कहा, 'यह तो बौद्धों की सी कुछ बात मालूम होती है, वैष्णवों की सी नहीं जान पड़ती।'

तक्ष बोला, 'हम सब चाहे बौद्ध हों चाहे वैष्णव, जैन हों चाहे शैव उस विशाल आँख की ओर टकटकी लगाते हैं जिसमें होकर सूर्य, चन्द्र और अन्य नक्षत्र अपने अपने समय पर झांकते हैं। जान पड़ता है आप नसों और माँस पेशियों की ऊपरी शक्ति का ही दिग्दर्शन करा सकते हैं। पद्म के भीतर की महाशक्ति, अनाहतनाद की अनन्त, तान अन्तर्दृष्टि की अखण्ड अभंग ज्योति और कक्षान्तर्गत अपरमित बल की आपने और आपके आचार्यों ने कल्पना भी नही की।'

इस भाषा में केवल अलंकार की ध्वनि ही न थी। अन्तक वाद को बढ़ाने के लिये एक तर्क की खोज कर ही रहा था कि उसकी आँख चतुर्भुजी विष्णु के मृदुल नेत्र और वरद मुस्कराहट पर गई और वहीं अटक गई। क्यों ? वह समझ नहीं सका। झट किसी परम्परा या दुराग्रह ने उसको विवश किया; परन्तु वह बड़ी शिष्टता के साथ बोला, 'शंख, क्या आप वास्तव में तक्ष हैं ? आपकी वाणी तो ब्राह्मणों सदृश है। आप अवश्य किसी गुरुकुल के स्नातक हैं।'

यवन की इस शिष्ठता में उसकी पराजय की गन्ध पाकर शंख को थोड़ा सा सन्तोष हुआ। उत्तर दिया, 'मैं तक्ष ही हूं। पढ़ा लिखा कम होने पर भी इतना तो हमारे सारे वर्ग को जानना ही चाहिये, नहीं तो हम लोग वैसी आँख उत्कीर्ण कैसे कर सकते हैं?'

यवन ने चतुर्भुजी विष्णु की मूर्ति को फिर देखा और वह फिर प्रभावित हुआ।

बोला—'यह मुस्कराहट मुझको बहुत हैरान कर रही है। अकेली मुस्कराहट तो कोई बड़ी बात न थी, परन्तु नेत्रों की महानता इस अर्ध स्मित के साथ मिलकर न जाने क्या कह रही है। मैं समझने की चेष्टा करता हूं, किन्तु समझ में नहीं आ रहा है। तक्ष, मेरा एक प्रस्ताव सुनो।

शंख ने उत्तर दिया—'कहो, क्या प्रस्ताव है आपका?'

अन्तक ने कहा—'अपनी इस मूर्ति को आज के लिये यहीं छोड़ दो। इसको बार बार देखूँगा और समझूँगा। कल आपके साथ फिर थोड़ी देर इस अत्यन्त गूढ़ विषय पर बातचीत करूँगा। किसी असाधारण महक को एक बार सूंघ लेने पर बार बार सूँघने को जी चाहता है, परन्तु बार बार सूँघ लेने पर भी उस महक की स्मृति मन में सदा के लिये नहीं बन पाती; एक बार अनूठी तान सुन लेने पर कान ललचाया ही करता है; एक बार किसी रूपराशि में से फूट निकलने वाली मधुर मुस्कान को फिर क्या किसी ने पाया? स्मृति बलात् उन सब चित्रों को उन सब अनुभूतियों को सामने खड़ा करना चाहती है, परन्तु उस विभूति को कहाँ से पाया जाय?'

अबकी बार शङ्ख को कुछ आश्चर्य हुआ। पूछा, 'यह क्या कह रहे हो यवन! यह तो कुछ हमारे ही सिद्धान्त की प्रतिध्वनि सी है।'

'नहीं है, तक्ष' अन्तक ने कहा, 'उसी रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द को हम लोग अपोलो सरीखी प्रतिमा में उतारने का यत्न करते हैं और चाहते हैं कि जिस रूप को एक बार देखा था और फिर न देख पाया, जिस तान को एक बार सुना था और फिर कभी न सुन पाया, जिस रस, स्पर्श और गंध की एक बार अनुभूति प्राप्त हुई थी और फिर न हो पाई उसको अपोलो में बिठलाकर सदा प्राप्त करते रहें और तृप्त रहें, परन्तु..... ।'

'परन्तु क्या, यवन,' शङ्ख ने सहानुभूति के साथ प्रश्न किया, 'फिर भी किस बात की कमी रह जाती है ?'

अन्तक ने उत्तर दिया, 'कल बतलाऊँगा । कल तक के लिये मूर्ति को यहीं छोड़ दोगे ?'

चतुर्भुजी विष्णु की मूर्ति पर दृष्टि निक्षेप करके फिर अपोलो की मूर्ति को अर्ध क्षणमात्र देखकर शङ्ख ने कहा—'कहाँ रक्खोगे ठीक ठीक बतलाना ।' अन्तक ने ठीक ठीक बतला दिया ।

शङ्ख बोला—'कल आऊँगा । मूर्ति को संभालकर रखना । तुम्हारे अपोलो की स्वर्णमूर्ति से यह प्रस्तर मूर्ति अधिक मूल्यवान है ।'

अन्तक—'स्वर्ण की मूर्ति—हाँ स्वर्ण की । इसका निर्णय तो बड़े विशेषज्ञ ही कर सकते हैं कि अधिक मूल्यवान कौनसी मूर्ति है ।' शङ्ख अपने घर को चला गया ।

## ( ४ )

अब एकान्त में अन्तक ने चतुर्भुजी विष्णु की मूर्ति को सतृष्ण नेत्रों से मन भर कर देखना प्रारम्भ किया । आँख में और ओठ पर इतना आकर्षण था कि अन्तक विस्मय में डूब डूब जा रहा था, परन्तु जब उसके नेत्र मूर्ति के अन्य अंगों और उपांगों पर घूम जाते तब उस के विस्मय को शांति मिल जाती और वह सोचता—'इस प्रतिमा की

देह को यूनानी ढाँचे पर गढ़ा जाता तो इसका सौन्दर्य कितना महान् कितना विशाल होता ! इसका प्रभाव अजेय होता। 'मनुष्य सदा के लिये इसका दास हो जाता।' परंतु जब उसके नेत्र प्रतिमा की विलक्षण मोहक आँखों और ओठों के आश्चर्यपूर्ण अर्ध स्मित पर अटक जाते तब वह यूनानी सौन्दर्य को थोड़ी देर के लिये भूल जाता। कुछ समय उपरांत अन्तक की दृष्टि चतुर्भुजी विष्णु के नेत्रों और ओठों पर अधिक स्थिर हो गई और वह भावोन्माद में गद्‌गद्‌ हो गया। उसने सोचा, 'विष्णु क्या अपोलो से भी ज्यादा सुन्दर हैं? शरीर का सत्य विष्णु में मेरे अपोलो की अपेक्षा बहुत कम है परन्तु इनकी आँखों और मुस्कान में यह क्या है?

परम्परा पूज्य अपोलो को इस सन्तुलन में जरा हलका बाँट मिलने के कारण अन्तक की श्रद्धा को ठोकर लगी। अपोलो को उसके पूर्व पुरुषों ने पूजा था, अपोलो को उसकी सारी जाति पूजती थी, इसलिये विष्णु के प्रति इतनी बड़ी मात्रा में श्रद्धा भेंट कर जाने के कारण अन्तक को अपने ऊपर ग्लानि हुई और वह विष्णु की मूर्ति की देह के अन्य अङ्गों की तुलना अपने अपोलो के अङ्गों से कर करके आत्मग्लानि को गलाने लगा। यकायक उसके मन ने विष्णु की मूर्ति को उठाकर सब तरफ से देखने का निश्चय किया। उसने मूर्ति को उठाया। हाथ से स्पर्श किया। बहुत चिकनी थी, उतनी ही जितनी अपोलो की। इस प्रतियोगिता में अपोलो को विजयी होता हुआ न देखकर अन्तक ने हठ की सांस ली, और झुंझलाकर ज़रा ज़ोर से, और असावधानी के साथ, मूर्ति को धरती पर रक्खा। हाथ खींचते ही मूर्ति गिरी। अन्तक ने बहुत चेष्टा की; न सँभाल सका। मूर्ति गर्दन से टूट गई।

अन्तक को पसीना आ गया। बहुत देर तक पश्चात्ताप और परिताप में डूबे रहने पर भी अन्त में जब अपने को असमर्थ ही पाया तब उसने सोचा, 'अपोलो ने रुष्ट होकर इस मूर्ति को तोड़ दिया है, अब वही मेरे भविष्य को सँभालें।'

( ५ )

दूसरे दिन नियुक्त समय पर शंख आया। दोनों मूर्तियां पौर में रक्खी हुई थीं। दोनों कलाकार द्वार बाहर चौपाल में बैठ गये। बात-चीत होने लगी।

शंख—'यवन, आप यदि वैष्णव होते तो अपोलो की आकृति को बहुत सुन्दर बनाते।'

अन्तक—'मैं यदि वैष्णव होता तो अपोलो की मूर्ति की मूल शिला पर पहिली टाँकी हथौड़ी चलाने के पूर्व ही आत्मघात कर लेता।'

शंख—'आत्मघात! यह तो बड़ा भारी पाप है। क्या आप लोग आत्मघात करने को श्रेयस्कर समझते हैं?'

अन्तक—'आत्मघात तो प्रत्येक दशा में निन्दनीय है, परन्तु आपके देश में तो सब कोई हर समय आत्मघात करते रहते हैं!'

शंख—'सो कैसे यवन?'

अन्तक—'आपकी आत्मा स्वतंत्रता के साथ विचरण नहीं कर सकती। जहाँ देखो वहाँ आपका समाज और व्यक्ति निषेधों से जकड़ा हुआ है। प्रत्येक निषेध के सामने आपको सिर झुकाना पड़ता है। हमारे देश में न तो इतने निषेध हैं और न निषेधों को इतनी मान्यता प्राप्त है।'

शंख—'हमलोग नीचे ठोकर खाकर ऊपर देखते हैं। आप जिनको निषेध कहते हैं हम उनको नियम के नाम से पुकारते हैं। आप हमारे जिस संयम को निषेध कहते हैं हम उसी के द्वारा इस संसार को वश में कर लेते हैं और फिर अन्तर्यामी शक्ति में मिल जाते हैं।'

अन्तक—'हमारे देश में चलो तो देखोगे कि ओलम्पगिरि के देवताओं के समक्ष कैसे सुन्दर युवक और कैसी कैसी रूपवती सुन्दरियाँ अपने खेलों द्वारा आनन्द और अर्चना को भेंटती हैं। जितनी उनकी

देह सुडौल होगी और जितनी फूलों से सजाई गई होगी देवता उतने ही अधिक प्रसन्न होंगे। ओलम्पगिरि पर प्रति वर्ष हर्ष और परिहास की कितनी वर्षा होती है उसका आप लोग अनुमान ही नहीं कर सकते।'

शंख—'अन्त में—अन्त में क्या रह जाता है, यवन?'

अन्तक—'आप ही इसका उत्तर दो तत्त्व, क्योंकि हम तो जन्म भर हँसते रहना चाहते हैं और हँसते हँसते मरना चाहते हैं। बौद्धों की तरह तृष्णाओं से बचने की रट लगा लगाकर प्रतिक्षण अपने को घायल नहीं करना चाहते हैं।'

बौद्ध पर किये गये इस प्रहार को शंख ने पसन्द किया, इसलिये विवाद की धारा को दूसरी दिशा मिलने लगी।

शंख ने कहा—'यवन आपके यहां लोग कितने वर्ष तक इस तरह के हर्ष और विनोद का जीवन व्यतीत करते हैं।'

अन्तक—'हमारे यहां जिनके ऊपर देवताओं की अधिक कृपा होती है वे युवावस्था में ही संसार से विदा ले जाते हैं* वैसे किसान मज़दूर तो बहुत लम्बा जीवन पाते हैं।'

शंख—'हमारे यहां इससे उल्टा है। यहाँ देवताओं की जिन पर अधिक कृपा होती है वे बहुत जीते हैं। विष्णु भगवान की मुस्कराहट और आंखों की मृदुता का वरदान यही संकेत करता है।'

विष्णु की मूर्ति की बात छिड़ते ही अन्तक को कपकपी आ गई। उसकी स्पष्ट घबराहट को देखकर शंख को सन्तोष हुआ। उसने कहा, 'जीवन और मरण दोनों में जो आनन्द है विष्णु की मूर्ति अपोलो की सी देहवाली न होते हुये भी उस आनन्द को विपुलता के साथ प्रदान करती है।'

---

*Those whom gods love die young.

अन्तक विचारमग्न हो गया। शंख ने सोचा शास्त्रार्थ में उसकी विजय हुई। बोला, 'मेरी बात के लिये प्रमाण चाहना हो तो मूर्ति का एक क्षण के लिये फिर दर्शन करलो।' अन्तक कोई उत्तर न दे सका।

शंख के जरा अनुरोध पर दोनों पौर में गये जहाँ अपोलो और विष्णु की मूर्तियां रक्खी हुई थीं।

अन्तक जानता था कि एक क्षण उपरान्त विष्णु की मूर्ति को हाथ लगाया जायगा और उसका खंडित होना प्रकट हो जायगा। उसने सोचा मूर्ति को शंख न उठावे। इसलिये मूर्ति की ओर बढ़ते हुये अन्तक ने कहा, 'जहाँ तक इस मूर्ति की आकृति का कल्याणकारिता से संबंध है प्रसंग नर्विवाद है, सौंदर्य भी, अब मैं मानता हूं, इसमें प्रचुर है; परन्तु सत्य के आदर्श से यह दूर है।' अन्तिम वाक्य कहते कहते अन्तक का गला काँप गया—उधर मूर्ति को उठाने में हाथ भी कांप गया—मूर्ति का सिर धड़ से अलग होकर पृथ्वी पर गिर गया।

शंख के मुँह से चीत्कार निकल पड़ा, अन्तक के मुँह से भी नाट्य करने वाले नट की 'ओफ' से अधिक गहरी 'ओफ' निकल पड़ी। थोड़ी देर सन्नाटा छाया रहा।

एक घड़ी उस स्थान का वातावरण करुणा से भर गया। जब शान्ति की थोड़ी सी स्थिरता आई अन्तक ने भरे गले से कहा, 'अपोलो रक्षा करें। विष्णु-मूर्ति को अपोलो की मूर्ति के पास रखने से ही यह दुर्घटना घटी। अपोलो ने क्रोध करके विष्णु मूर्ति को स्वयं खंडित किया है।

शंख का भाव क्रोध के रूप में पलटने को हुआ। अन्तक चतुर था उसने तुरन्त उद्‌बोधन किया, 'आप चिन्ता मत करिये मुझको ऐसा मसाला मालूम है जिससे खंडित भाग बिलकुल पूर्ववत् जुड़ जायगा; कोई नहीं कह सकेगा कि मूर्ति खंडित है।'

शंख ने कहा, 'यवन तुम नहीं जानते हो आर्य लोगों में खडित मूर्ति का कोई महत्व नहीं।'

अन्तक ने प्रस्ताव किया, 'परन्तु कोई जान सके तब तो।'

शंख ने उन दोनों मूर्तियों की ओर प्रेक्षण किया। पौर में शब्द गूंज गये: 'कोई जान सके तब तो' शंख के कान में शब्द भर गये 'कोई जान सके तब तो।'

दो क्षण के लिये उसने अपोलो की मूर्ति को सतृष्ण देखा।

शंख ने पूछा—'इसके जोड़ने में कितना समय लगेगा?'

अन्तक ने उत्तर दिया, 'आज दिन में जोड़ लग जायगा और रात भर में सूखकर पक्का हो जावेगा।'

शंख ने कहा, 'तब ठीक है। जो हुआ सो हुआ। परन्तु मैं तुम्हारे अपोलो की परीक्षा करना चाहता हूं। खंडित मूर्ति के पास ही इसको यथावत रहने दो; फिर देखो जोड़ लगाने में अपोलो भी कुछ सहायता करते हैं या नहीं? यदि जोड़ ऐसा बैठे कि खंडित हो जाने का निशान न मालूम पड़े तो मैं भी समझूंगा कि अपोलो में कुछ प्रताप है।'

अन्तक ने स्वीकार किया।

शंख कहता चला गया—'खैर, जो हुआ सो हुआ।'

( ६ )

अन्तक ने सोचा सस्ते छूटे और वह उत्साह तथा श्रद्धा के साथ अपोलो का स्मरण कुछ क्षण करता रहा। उसने चतुरता के साथ सिर को धड़ से जोड़कर अपोलो की मूर्ति के पास रख दिया। काम करने में उसको काफ़ी समय लग गया, परन्तु उसको अखरा नहीं। जब वह जुड़ाई का काम समाप्त कर चुका तब सन्तोष की हँसी हँसा। उसने सफाई के साथ तक्ष शंख को धोखा दिया और बाद को सहज ही पुटिया लिया इस बात पर वह आनन्दमग्न था। उस रात उसको नींद अच्छी आई।

सवेरे उठा तो देखा पौर में अपोलो की मूर्ति नहीं है ! आँखें मलीं। बन्द कीं। फिर मलीं; परन्तु अपोलो की मूर्ति न दिखलाई पड़ी। फिर भ्रम में घर का कोना कोना छान डाला, परन्तु अपोलो की मूर्ति न मिली। कई घड़ियाँ घोर कष्ट में काटीं। अन्त में उसने कोट्पाल और दण्डनायक से सहायता लेने का निश्चय किया। एकाध बार उसको सन्देह होता था, कहीं विष्णु ने बदला तो नहीं लिया। किन्तु यह सन्देह शीघ्र ही विलीन हो गया।

परन्तु कोट्पाल और दण्डनायक के पास जाने के पहिले वह शङ्ख के पास गया।

शङ्ख को उसने अपोलो की मूर्ति के गायब हो जाने की बात सुनाई।

किञ्चित् विचारमग्न होकर शङ्ख ने कहा—'यवन, अपोलो आपसे रुष्ट तो नहीं हो गये हैं ?'

अन्तक को यह आक्षेप अच्छा नहीं लगा। उसने उत्तर दिया, 'अपोलो अपने भक्त से रुष्ट नहीं होते। कोई देवता अपने भक्त से विरक्त नहीं होता।'

शङ्ख बोला, 'फिर क्या बात है ?'

अन्तक—'आप ही बतलाओ।'

शङ्ख—'अधिक तो कुछ समझमें नहीं आता केवल एक उपजती है।'

अन्तक—'मैं बहुत चिन्तित हूँ। शीघ्र कहो।'

शङ्ख—'जान पड़ता है भगवान् विष्णु ने अपोलो से बदला लिया है, कदाचित् ब्याज समेत।'

अन्तक व्यंग को समझ गया। जी में बहुत कुढ़न हुई। 'यदि मनुष्य मनुष्य से निबट लें तो देवताओं को परस्पर लड़ाने की आवश्यकता नहीं है। तब, मैं कोट्पाल और दण्डनायक से इसका निर्णय करवा-ऊँगा।

शङ्क अन्तक के खिसियाये हुये स्वर के प्रसन्न संकेत को अवगत करने की चेष्टा करने लगा; परन्तु उक्त संकेत के अन्तिम आवरण को उसकी अन्तर्दृष्टि न भेद सकी।

शङ्क ने कहा—'यवन कोटपाल और दण्डनायक देवद्वन्द्व का न्याय निर्धार नहीं कर सकते। अपोलो से बड़ा आपका कौन सा देवता है?'

'वज्रपाणि इन्द्र।' अन्तक ने उत्तर दिया, 'हमारे देश में उनको जुपिटर कहते हैं। क्यों पूछ रहे हो?' शङ्क चुप रहा। अन्तक कुछ सोचने लगा। एक क्षण बाद बोला, 'तक्ष, क्या आप सचसच कहोगे?'

'अन्तक, यह प्रश्न आप अपने से करो।' शङ्क ने तुरन्त उत्तर दिया।

थोड़ी देर के लिये सन्नाटा छा गया। अन्तक शङ्क के घर से चल पड़ा। जाते जाते बोला, 'देवताओं की यह लड़ाई बहुत अहितकर हुई। मैं तो लुट गया।'

'और मैं भी लुट गया' शङ्क ने शांत स्वर में कहा।

अन्तक कोटपाल के पास गया। विष्णु की मूर्ति कैसे खंडित हुई यह उसने नहीं बतलाया। दुर्घटना को आकस्मिक और दैवी बतलाने का भरसक प्रयत्न किया।

कोटपाल अन्तक को दण्डनायक के पास ले गया।

दण्डविधान में दैवी घटनाओं को भी मान्यता प्राप्त थी। कोटपाल देव-प्रकोप और सरल चोरी के बीच में अपने संशय को टाँगे हुये था। किसी निश्चय पर न पहुँच पाने के कारण वह दण्डनायक के पास गया। दण्डनायक को भी इसी भ्रम में थोड़े समय तक फसना पड़ा। परन्तु वह विष्णुगुप्त चाणक्य के अर्थशास्त्र से परिचित था और वह विक्रमादित्य के तेजस्वी स्वभाव को भी जानता था। वह यह नहीं चाहता था कि इस साधारण सी घटना पर राज सभा में विवाद हो

और सम्राट को न्याय करने के लिये विवश होना पड़े। दण्डनायक ने कोटपाल को आज्ञा दी, 'उस तत्त्व को पकड़ो और उसके घर की छान बीन करो।'

कोटपाल ने संदिग्ध मन से आज्ञा पालन करना स्वीकार किया, और एक घड़ी पीछे ही शङ्ख को अपने पहरे में ले लिया। घर की छानबीन करने पर अपोलो की मूर्ति भी शङ्ख के घर में मिल गई।

कोटपाल ने शंख को कुत्सित कर्म के लिये दोष दिया। पूछा, 'एक विदेशी को तूने क्यों इस प्रकार कष्ट दिया ? जानता है परमभट्टारक विदेशियों की कितनी रक्षा करते हैं ?' शङ्ख कोटपाल का मुँह ताकने लगा।

कोटपाल ने कहा, 'विदेशियों की छोटी सी चोरी करने पर ही मृत्यु दण्ड की व्यवस्था है।' शंख ज़रा सा काँप गया।

फिर दृढ़तापूर्वक बोला, 'परन्तु परमभट्टारक के राज्य में प्रत्येक मनुष्य के साथ चाहे वह विदेशी हो या देशी न्याय किया जाता है। इस यवन की बात वेदवाक्य नहीं मानी जा सकेगी। यदि इसका अपोलो मेरे विष्णु की गर्दन तोड़ सकता था तो मेरा विष्णु निश्चय ही इसके अपोलो को अपने ही गर्भगृह में सेवा के लिये पहुँचा सकता है। कोटपाल ने अन्तक से प्रश्न किये। उसने हाथ नहीं धरने दिया। कोटपाल के विवेक में मामला कुछ कुछ बैठा, परन्तु पूरी बात समझ में नहीं आई।

दण्डनायक की समझ में लगभग पूरी बात आ गई। अन्तक से उसने प्रश्न किये, परन्तु विदेशी होने के कारण अपने को सुरक्षित समझकर वह झूठ पर झूठ बोलता चला गया। उसका विश्वास था कि झूठ या फरेब को चतुरता के साथ बर्ता जाय और वह पकड़ा न जा सके तो एक प्रकार का सद्‌गुण ही है। परन्तु दण्डनायक चाणक्य के अर्थशास्त्र का अनुयायी था।

दण्डनायक ने कहा, 'विदेशी तुम रक्षणीय होने पर भी अराध्य नहीं हो। सत्य कहो विष्णु की मूर्ति कैसे टूटी ?'

सिवाय सत्य के अन्तक ने सभी कुछ कहा।

तब दण्डनायक बोला, 'अब तुम्हारे हाथ पत्थर के चक्कों के नीचे दबाकर कुचले जायँगे, नहीं तो सच बतलाओ।'

अन्तक ने कहा, 'मैंने सत्य ही बतलाया है। केवल एक बात झूठी है, परन्तु वह शिल्पकार की कला के अङ्ग की थी, इसलिये प्रकट नहीं की। अब करता हू। अपोलो की मूर्ति सोने की नहीं है।'

यकायक शंख ने पूछा, 'तब काहे की है ?'

'पीतल की' अन्तक ने ठण्डक के साथ उत्तर दिया, 'उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग को न केवल यथावत् बनाना आवश्यक था वरन् उस अङ्ग प्रत्यंग को भीतरी बल से चमत्कृत भी करना था।'

'परन्तु वह मूर्ति, यवन', शङ्ख ने धृष्टता के साथ विक्षेप किया, 'सोने की न बन सकी। यह तो एक प्रकार की गविद्या रही। मेरी कला शिला के अञ्चल में खेलती हुई भी वरदान में कहीं अधिक विभूतिमयी है।'

दण्डनायक यूनानी के उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुआ था। अभी उसके लिये विष्णु-मूर्ति के टूटने का सही कारण जानना शेष था। शंख पर खिजलाहट की दृष्टि डालकर रूखे स्वर में बोला, 'तुमको, तक्ष, इस विदेशी से कहीं अधिक बड़ा उत्तर देना है। मुझको जान पड़ता है कि अपोलो की मूर्ति की तुमने ही चोरी की, और विष्णु भगवान के कोप का तुमने बहाना बनाया। तुमको प्राणदण्ड तक दिया जा सकता है।'

'प्राणदण्ड !' शंख ने सशंक होकर कहा।

'प्राणदण्ड !' अन्तक ने आश्चर्य के साथ कहा।

'हाँ प्राणदण्ड', दण्डनायक बोला, 'सावधान, यवन, सत्य कहो, नहीं तो जिस हाथ ने द्वेषवश अथवा अकस्मात् तक्ष निर्मित मूर्ति को तोड़ा है वह कुल्हाड़ी से काट दिया जायगा; और जिस सिर में अपोलो की मूर्ति की स्वर्ण-प्रतिमा समझकर चोरी की बात समाई उसको खड्ग से काटकर फिकवा दिया जायगा।'

'परन्तु मैं तो ब्राह्मण हूँ' शंख ने कहा, 'ब्राह्मण अवध्य है। परमभट्टारक विक्रमादित्य के राज्य में अधर्म नहीं हो सकता।'

'परमभट्टारक के राज्य में चोरों के लिये अनुकम्पा भी नहीं है', दण्डनायक बोला, 'अतः मुक्त होकर बात करो; पीछे दया की भिक्षा माँगना व्यर्थ होगा।'

अन्तक ने आश्चर्य प्रकट किया, 'शंख तो अपने को तक्ष प्रकट करता रहा है। यह सब क्या है?'

दण्डनायक ने तीव्र स्वर में आदेश किया, 'दोनों अभियुक्त और दोनों ही अभियोक्ता हो, इसलिये बिलकुल सत्य बोलना अन्यथा दोनों को ही धर्म के अनुसार कठोरतम दण्ड दूँगा। शंख, तुमको अभी अपने ब्राह्मण होने का प्रमाण देना है।'

दोनों ने घटना को सचाई के साथ बतला दिया। एक ने भय के मारे झूठ बोला था, दूसरे ने हिंसा और लोभवश। शिल्पकारों की रक्षा की विशेष व्यवस्था होने के कारण दण्डनायक ने निर्णयपत्र दे दिया।

अन्तक को उज्जयिनी के गुरुकुल में एक वर्ष तक रहकर आर्य वास्तुकला के अध्ययन करने का दण्ड मिला। दण्डनायक ने कहा, 'तुम जिस कला को तुच्छ समझते रहे हो उसको आचार्य के चरणों में बैठकर सीखो। तुम अपने कुछ भ्रमपूर्ण दुराग्रहों को प्यार करते हो। उनको भुलाने की चेष्टा करना ही तुम्हारे लिये काफी दण्ड है। यदि

तुमने कल्याणकारी कला को मनोगत कर लिया तो गुरुकुलवास तुम्हारे लिये तुम्हारे जीवन का एक श्रेयस्कर समय होगा।'

शंख अपने दण्ड की घोषणा की प्रतीक्षा में अन्तक को दिये गये दण्ड की मनमें आलोचना न कर सका। दण्डनायक मेरे लिये क्या निर्णय करते हैं इसके सुनने के लिये शंख विह्वल हो उठा।

दण्डनायक ने पूछा, 'शंख, तुमने अपनी जाति क्यों छिपाई?'

'उसका सम्बन्ध मेरी कला से है, इस अभियोग से नहीं।' शंख ने उत्तर दिया।

दण्डनायक ने रुष्ट होकर आग्रह किया, 'तो भी तुमको बतलाना पड़ेगा; नहीं बतलाओगे तो इस कदाचार के विषय में तुमको अलग दण्ड दूँगा।'

शंख दण्डनायक के तीखेपन को समझ गया। बोला, 'दण्डनाथ, मैं ब्राह्मण हूं इसमें कोई सन्देह नहीं। एक तक्ष युवती, जो सौन्दर्य में किसी भी नागकन्या से अधिक रूपवती है—लक्ष्मी के सदृश है—मेरे हृदय की अधिष्ठात्री देवी बन गई। उसका स्मित और उसकी नेत्र ज्योत्स्ना मिलकर मेरे जीवन के लिये जो सम्पदा हैं वह मेरी दृष्टि में परमभट्टारक के साम्राज्य के भी मूल्य से परे हैं। उसी स्मित और उसी नेत्र ज्योत्स्ना को मैं स्थायित्व देने की चेष्टा करता आया हूं। कैसे करता? चित्र बनाता तो कदाचित् कुछ पल उपरान्त वह भदरंगा हो जाता, इसलिये शिलाखण्ड पर अपनी साधना को मूर्त करने का मैंने निश्चय किया। ब्राह्मण होकर यह कार्य असम्भव था। इसलिये तक्ष बना। तक्ष बनकर लगन के साथ इस कला को सीखा और हृदय को पसीने के साथ बहाकर वह मूर्ति बनाई। मैं विष्णु का पूजक हूँ। जैसे मेरी प्रेमिका मेरी कला को उत्प्रेरित करती है वैसे ही विष्णु मेरे मन को पवित्र करते हैं। इसलिये मैंने विष्णु की पवित्र आराधना में उस अद्वितीय स्मित और विलक्षण मोहकता वाले नेत्र लालित्य को गुम्फित

करके अपनी लालसा को एक वर्ष में पूरा किया। इस मूर्ख यवन ने उस मूर्ति को तोड़कर मेरे हृदय के टुकड़े किये।'

दण्डनायक ने कहा—'तक्ष या ब्राह्मण जो कुछ तुम होओ, मेरा विश्वास है कि तुम सत्य ही बोल रहे हो—मैं तुमको उज्जयिनी से एक वर्ष के लिये निष्काषित करता हूं। तुम अपनी प्रेमिका को साथ नहीं ले जा सकोगे। यदि आज्ञा का उल्लंघन करोगे तो घोरतर दण्ड के भागी होगे।'

'तब प्राणदण्ड ही दीजिये', शंख ने निश्शंक होकर कहा।

दण्डनायक पर इस उद्गार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बोला, 'तभी तो तुम संसार को उस स्मित वाले ओठोंकी और उस विशालता वाले नेत्रों की मूर्ति दे सकोगे।'

# दोनों हाथ लड्डू

झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेज़ी सेना का सामना कर रही थीं; कालपी में रावसाहब, तात्या टोपे और बानपुर के राजा मर्दनसिंह अंग्रेज़ों से लोहा लेने की सिरतोड़ तैयारी कर रहे थे।

रंगरूटों को भर्ती करना इस तैयारी का एक खास अंग था, यह विभाग तात्या टोपे के हाथ में था। गमटेरसिंह ने बड़ी विनय के साथ तात्या से कहा—'पण्डित जी महाराज, मुझको भर्ती कर लीजिये और मेरे बीस साथियों को भी।'

तात्या ने उन सबों को देखा—ऊंचे, पूरे, भारी देह के जवान। किसी की मूछें उठी हुई, किसी की दाढ़ी कानों पर चढ़ी हुई; किसी किसी के बाल खिचड़ी, परन्तु आँखें पैनी और तेज़। सेना में भर्ती हो जाने के लिये ये गुण काफ़ी थे।

ज़रूरत न होने पर भी तात्या ने संक्षेप में उन सब का इतिहास पूछा।

पूँछताछ का सार निकला—कुछ की जागीरें अंग्रेज़ों ने जब्त कर ली थीं; कुछ के गाँव में अकाल पड़ गया था; एक के गांव वालों ने पांच साल का पेशगी लगान अदा करने से इनकार कर दिया था; दो को मालूम हुआ था कि रावसाहब की सेना में बेभाव गुलछर्रे उड़ते हैं; एक अपने गांव के दो बैरियों का क़तल करके भागा था; और कुछ को डाके पर डाके डालते-डालते भी हाथ बहुत थोड़ा लगा था।

लड़ने की उमंग सब में थी। अंग्रेज़ों के प्रति सब में घृणा थी। खून की नदियाँ बहा देंगे, अपना सिर दे देंगे, अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान से बाहर खदेड़ कर ही दम लेंगे, ये ही वाक्य सब के होटों पर उत्साह के साथ नाच रहे थे।

तात्या टोपे को—या वहां किसी को भी—और चाहिये भी क्या था? भर्ती कर ली गई। अंग्रेज़ी पल्टनों के जो विद्रोही रावसाहब के झण्डे तले आ गये, उन्होंने बरसों क़वायद परेड की थी, परन्तु अंग्रेज़ों को निकाल भगाने की धुन में और कई ओर से मारकाट के समाचारों की आई हुई बाढ़ में रंगरूटों को संवारने बनाने के लिये समय ही कहाँ था? सीखे सिखाये सिपाहियों में ये रङ्गरूट शीघ्र ही घुलमिल जायेंगे, गली-पिघली हुई चाँदी की थपियों की तरह इन सब का एक बड़ा थप्पा बन जायगा, तात्या ने सोचा।

और, देखने में वे सब रण की प्रचण्ड सामग्री प्रतीत होते थे।

वेतन और भोजन उतना ही मिलेगा जितना अन्य सैनिकों को मिलता था। परन्तु रंगरूट क्या वेतन के लालच से भर्ती हुये थे?

'हमारा पेशा नौकरी करना नहीं है।'

'फिर?'

'हम सब अपने देश के लिये सिर देने को आये हैं। अपने राजाओं और नवाबों का राज्य क़ायम करेंगे; अंग्रेज़ों को यहां से भगा कर ही चैन लेंगे।'

तात्या प्रसन्न था।

एक रंगरूट ने कहा—'हमारी जब्त की हुई जागीर हमको न भी मिले तो हमें परवाह नहीं। यज्ञ में अपना बलिदान करने वाला पलटे में कुछ नहीं चाहता।'

देवता प्रसन्न होकर अपने आप वरदान देते हैं, यज्ञ करने वाला चाहे कुछ मांगे अथवा न मांगे, तात्या जानता था।

वे सब भर्ती हो गये। दो एक दिन कवायद परेड में भाग भी लिया—जो उनको बहुत अखरी। उनमें से कई ने सोचा—मरने मारने वाले को इतना हाथ-पैर हिलाने की ज़रूरत ?

परन्तु उस क़वायद परेड में एक बड़ा मनोरञ्जन भी सुलभ था। अंग्रेज़ी सेना के विद्रोही सिपाही जिस भड़कीली पोशाक में रहते थे, उसका कुछ अंश इन रंगरूटों को भी मिला, और सबसे बढ़कर भांग। बादाम और शक्कर की गोलियाँ परेड के ही समय; चढ़ते हुये नशे में पूरे सिपाही की ऐंठ-उमेठ, छाती का फुलाव और सिर का तनाव। उस भ्रम में मन कहता था, अंग्रेज़ों के जाते ही जागीर भी मिलेगी।

अंग्रेज़ों की हार में संशय की गुञ्जाइश न थी। कालपी में हज़ारों मन बारूद, लाखों मन गोले, भांग-बूटी, बादाम और शक्कर; रुपया भी काफ़ी। काफ़ी न भी हो तो अंग्रेज़ों से लड़ते जायंगे और उनका सामान लूटते जायेंगे। परन्तु इसकी ज़रूरत ही क्यों पड़ने लगी ? रावसाहब की छावनी में सब कुछ था—सोना, चाँदी कपड़े। गोला बारूद इत्यादि के अतिरिक्त भी और सब कुछ। सोचते थे, बड़ा मजा रहेगा। युद्ध अपना काम जो ठहरा।

एक दिन युद्ध सामने आ ही गया। तात्या को अंग्रेज़ों के फ़ौजी संयम और अनुशासन का पता था। मुक़ाबले में प्रसिद्ध अंग्रेज़ सेनापति जनरल रोज़ था। रण-कौशल में तात्या जनरल रोज़ से उन्नीस नहीं बैठता था, परन्तु उसको अनिवार्य कारणवश कहीं चला जाना पड़ा। संचालन रावसाहब कर रहा था।

संचालन कोई भी करता। अधिकांश सिपाही रणबांकुरे थे। कट मरने के लिये तैयार। विशेषतः इसलिये कि उन्होंने उस दिन दुगुनी मात्रा में भंग बूटी छानी थी। रावसाहब भी किसी से कम नहीं, क्यों कि सैनिक से सेनापति तो बड़ा होता ही है।

सिपाही पिल पड़ने के लिये दांत भींच रहे थे। लड़ाई यमुना के भरकों, कछारों में होकर हुई। विद्रोही पल्टनों के बड़े अफसर युद्ध की योजनाओं का अभ्यास रखते थे, इसलिये रावसाहब को ज्यादा दिमाग़ पच्ची नहीं करनी पड़ी।

कुछ भरकों और कछारों की रक्षा तथा अंग्रेज़ी सेना की सघन पांतों पर यकायक वज्र प्रहार करने के लिये इन अफ़सरों ने सिपाहियों को यत्र तत्र छिपाकर बिठलाया था। अंग्रेज़ी क़तारों के आने की प्रतीक्षा में सब चुपचाप बैठे थे—केवल नई भर्ती वाले वीर रस की बाढ़ में, अपने उमड़ते हुये शौर्य का संगम देखने के लिये व्याकुल हो होकर कुछ खुसफुस कर रहे थे।

'अंग्रेज़ सिपाही और अफसर रेशमी कपड़े पहिनते हैं।'

'कौन छुये उनके कपड़ों को ?'

'धुलवाकर स्वच्छ कर लेंगे, गरम पानी से निथरवाकर।'

'अजी उनकी घड़ियों और सांकलों पर न झपट लगायेंगे। सोने की घड़ियां और सांकलों पर ?'

'हाँ सो तो होगा ही। पर जितना सोना चाँदी अपनी छावनी में है, उतना तो अंग्रेज़ों के पास नहीं निकलेगा।'

'रावसाहब खुद जितना सोना और हीरा-जवाहर अपने गले और बाहों पर पहिनते हैं उतना दुनियां भर के अङ्गरेज़ जनरलों के तन पर नहीं निकलेगा।'

'और भाई, कालपी नगर में तो सोना चाँदी, हीरा, जवाहर मानो खचाखच भरा है।'

'एक दिन की छूट मिल जाय तो हम सब उसको बांट-बूट लें।'

फिर बूटी की तरंगें आने लगीं और अकेली कालपी क्या, उनको विश्व भर सोना–चाँदी से भरा हुआ दिखने लगा।

एक दिशा से आहट आई—जैसे अंग्रेज़ी पल्टन आरही हो। नशा थोड़ा-सा चौंका, परन्तु थोड़ा ही। रावसाहब के अफसरों के पास दूरबीनें थीं जिनमें होकर वे नशीली आँखों से भी कुछ देख सकते थे।

उन्होंने आगे से मोर्चों में छिपे हुये अपने सैनिकों को चुपचाप आदेश भेजा—'एक छोटासा ही दस्ता शत्रु का आरहा है, उसको बनाया जाये अपना निशाना; शाबाश बहादुरो।'

सिपाहियों की समझ में आया—दस्ता शत्र का आरहा है, बनाओ निशाना, शाबाश बहादुरो।

वह छोटा-सा दस्ता भी बन्दूकों की मार में नहीं आ पाया था कि उन 'बहादुरों' की उंगली बन्दूक की लिबलिबी पर जा पड़ी। धायं! धायं!! धायं!!! बड़ी ज़ोर से लगातार शब्द हुआ। और फिर तुमुल कोलाहल।

वह अंग्रेज़ी दस्ता जहाँ का तहाँ रह गया। जनरल रोज़ ने अपनी सेना के मुख्य भाग को ताड़ के पंखे की तरह फैलाया और रावसाहब की सेना को घेर लिया। रावसाहब की सेना के एक बाज़ू पर थोड़े से सैनिकों के साथ लक्ष्मीबाई, गई पाली को साधने-संभालने के प्रयत्न कर रही थीं, परन्तु सब विफल हुये। लक्ष्मीबाई को झाँसी से आये हुये थोड़ा ही समय हुआ था और उनके पास सैनिक भी बहुत कम थे। रावसाहब की हार निश्चित थी। परन्तु रङ्गरूटों की नहीं।

वे भी ताड़ के पंखे की तरह इधर उधर फैल गये, और मच्छरों की भांति इधर-उधर घुस बैठे।

रावसाहब की बहुत-सी सेना ध्वस्त हो गई।

परन्तु रावसाहब की ध्वस्त सेना का एक भाग अपने एक काम में चिपक गया। जिस समय यह भाग रावसाहब की सेना का अंग बना,

मानो तभी इसी कामना से भर्ती हुआ था, या वह कामना भीतर भीतर सुलगते सुलगते अब प्रचण्ड रूप धारण कर गई। और जब, लड़ाई के समय रंगरूट भर्ती किये जाते थे तब उनके भीतर बैठे हुये पिशाच को कोई देख भी कैसे सकता है ?

'चलो जल्दी करो। जागीर न मिल सकती हो तो यही सही, भागे भूत की लँगोटी भली।'

'अंग्रेज़ी छावनी में तो पहुँचने से रहे। रावसाहब की छावनी पर ही हाथ साफ़ करो।'

'हाँ, हाँ, अंग्रेज़ सिपाही लूट-मार कर ही रहे हैं। चलो उन्हीं में शामिल हो जाय।'

'और यदि तांत्या कहीं से फौज लेकर आ गया और अंग्रेज़ हार उठे तो ?'

'तो भी दोनों हाथ लड्डू रहेंगे। अंग्रेज़ों ने पूछा तो कह देंगे तुम्हारी सेना के शागिर्दपेशा हैं। रावसाहब आगये तो कह देंगे कि शत्रु को पीटने में लगे हुये थे। तुम्हारा काम किया, देश का काम किया, हमको इनाम दो, जागीर लगाओ। न जागीर लगाई तो इधर-उधर से उठाकर जेबों में इतना भरलो कि जागीर के बराबर होजाय।'

'हां जी, आखिर ये सब रावसाहब, नवाब साहब और राणा साहब लड़ ही काहे के लिये रहे हैं ? अपनी अपनी रियासत के लिये न ?'

और वे सब अपने निर्दिष्ट काम पर पिल पड़े। जैसी कि उनकी धारणा थी अंग्रेज़ी छावनी में लूटमार नहीं कर सकते थे। रावसाहब की छावनी की छावनी लूटी जा रही थी, उसी लूट में ये भी शामिल हो गये।

फिर और ताड़ के पंखे की तरह फैले और सिमटे, सिमटे और फैले। कालपी की नौबत आई। कालपी की लूट में भी शरीक हुये। जहाँ सुभीता देखा हाथ डाल दिया। उन्होंने वीररस में डुबकियाँ लगाईं, भर-भर कठोतों पान किया।

दोनों हाथ लड्डू रहे।

परन्तु किसी के हाथ में छोटा लड्डू था और किसी के हाथ में बड़ा। अंग्रेज़ों से आँख छिपाकर निकल आये, लेकिन एक दूसरे की आँख से न बच पाये।

'मैंने इतनी जानमारी न की होती तो क्या तुमको इतना सोना-चाँदी मिल जाता?'

'मैंने तुमसे कम प्रयत्न नहीं किया।'

'मुझको मालूम है कि तुमने कितना प्रयत्न किया। भांग की गोली डाल ली पेट में, थोड़ी-सी दौड़धूप की; बस। मैंने किया था रास्ता साफ़, तुम घुस पड़े और ले भागे।'

'तुमको क्या मालूम मैंने कितनी सिरखपी की है। दिन को दिन नहीं जाना और न रात को रात। भूखों-प्यासों मरा, अङ्गरेज़ों की गोलियां खाते खाते बचा, तब कहीं इतना थोड़ा सा हाथ लगा।'

'यह थोड़ा सा है!'

'तुम्हारे पास क्या कम है?'

'हमने लड़ाई में चोटें खाई हैं, हमारे घाव प्रमाण हैं।'

फिर वे आपस में लड़ पड़े। उधर अङ्गरेज़ बलवाइयों को दबा-दबाकर अपनी सत्ता की स्थापना करते जा रहे थे, इधर ये आपसी लड़ाई में उलझे हुये थे।

रावसाहब की छावनी और कालपी में दोनों हाथ लड्डू ले आने की कामना से घुसे थे। लड्डू लाये भी, परन्तु ऐसे लड़े, ऐसे, कि एक हाथ में भी लड्डू न रहा, और इतना लड़े कि जान पड़ता है जैसे अब लड़ रहे हों।

# खजुराहो की दो मूर्तियां

चन्द्रमा थोड़ा सा ही चढ़ा था। बरगद के पेड़ की छाया में चाँदनी आँख-मिचौनी खेल रही थी। किरणें उन श्रमिकों की देहों पर बरगद के पत्तों से उलझती बिदकती-सी पड़ रही थीं। कोई लेटा था, कोई बैठा था, कोई अधलेटा। खजुराहो के निवासियों और मन्दिरों में चहल-पहल थी।

जो बैठा था, उससे एक श्रमिक ने कहा, 'बीसल महोबे से जो कारीगर आज आया है, कहता था कि मन्दिर के गर्भगृह के चारों ओर दीवार में बारीक जाली का काम किया जाय तो कैसा रहे?'

बीसल बोला, 'कठिन नहीं है। कोमल जाति के पत्थर में बारीक से बारीक जाली छेदी जा सकती है, परन्तु अपने यहाँ प्रथा नहीं है।

'हां, मन्दिरों में देखी तो हमने भी नहीं हैं, परन्तु महोबे वाले ने क्यों कहा? मन्त्री ने कहा होगा।'

मन्त्री ने कहा हो या न कहा हो, मुल्तान से जो कारीगर लौटे हैं वे जाली, बेल-बूटे और पत्तियों के काम को ही बहुत कुछ समझने लगे हैं। उस काम में परिश्रम अधिक है, पर मन की उड़ान के लिये उकास कम है। और फिर गुरु लोगों ने जो नाप-तौल, आकार-प्रकार मन्दिरों के बनाने और सजाने के लिये सतयुग से निश्चित कर रक्खे हैं उनकी अवहेलना कैसे की जा सकती है? पत्थर में जालियां और बेल-बूटे बनाने में विवेक ही कितना लगाना पड़ता है?

'बहुत सीधा भी नहीं है। उसमें जो पच्चीकारी की जाती है वह तो बहुत परिश्रम लेती है।'

'बहुत कठिन भी नहीं है। उसमें आदर्श को मूर्त करने के लिये कहां स्थान है?'

बीसल की बात आक्षेप करने वाले की समझ में नहीं आई। बीसल पढ़ा लिखा था और अन्य शिल्पी उसको गुरु मानते थे। गूढ़ बात को समझ न पाने पर हां में हां मिलाने और स्थगित अवसर की ताक में बने रहने की कुछ परम्परा सी थी, पर उस श्रमिक ने फिर भी नम्रता के साथ पूछा—

'बीसल, आदर्श को मूर्त करना क्या?'

उत्तर मिला, 'अपने यहां आंखों के सामने नित्य आने वाले स्त्री पुरुषों की आकृति को पत्थर पर या पत्र पर नहीं उतारते; श्रद्धा, भक्ति, वासना, लालसा, मोह, विशालता के भावों को हृदय में मथकर फिर उनको लक्षणों के अनुसार सुन्दरता की लचकों और लोचों में बिठलाते हैं। मेरा प्रयोजन इसी से था।'

'पर—पर गर्भगृह के चारों ओर जालीदार पत्थर लगा देने से गुरुओं की बतलाई गई परिपाटी का बिगाड़ कहाँ होता है? निषेध तो सुना नहीं है, परन्तु तुम हम सबसे बहुत अधिक पढ़े लिखे और जानकार हो; यदि हो तो बतलाओ।'

'यह तो सोचो कि गर्भगृह में स्थित देवता को कुछ समय के लिये विश्राम भी मिलना चाहिये या वह जाली में निरन्तर देखता ही रहे?'

गर्भगृह के द्वार के पट खुलने और बन्द होने का समय नियुक्त था। यह बात प्रश्न करने वाले को मालूम थी और तुरन्त ध्यान में आ गई। उसने हामीं भी भर दी, परन्तु उसके भीतर किसी ने कहा—'देवता तो सर्वदा और सर्वत्र सजग रहता है और मन्दिरों के भीतर और बाहर स्त्री-पुरुष के नंगे और अश्लील प्रतिबिम्ब हैं, क्या देवता

उनको न देखता होगा ?...'और आगे सोचने का साहस उसमें न था। बीसल ने भी कुछ सोचा।

( २ )

परम्पराजन्य श्रद्धा और अन्ध भक्ति भी मन के भीतर की ठेस को पूरे प्रकार से न दबा सकी—न तो उस शिल्पी की और, कम से कम थोड़े से अंशों में, न बीसल की।

मन्दिर बन चुका था। कालन्जर से चन्देल...नरेश गण्ड का मन्त्री देखने के लिये आया। निरीक्षण के उपरान्त उसने बीसल और उसके सहयोगी शिल्पियों और श्रमिकों की सराहना की, पुरस्कार बांटे।

दूर दूर के नर-नारी उत्सव देखने के लिये आये थे। अश्लील मूर्तियों को देखकर थोड़े–बहुतों ने नाक–भौं सिकोड़ीं। उनके विचार ने सान्त्वना दी—'शिव जी को ठगने के लिये कामदेव ने जो जाल फैलाया था उसकी प्रतिमायें ही तो मूर्तियां हैं, और शिव जैसे अडिग, निश्चल और स्थिर रहे उसके प्रतीक मन्दिर के भीतर हैं।

यह सान्त्वना कहीं खुले रूप में कहीं मन ही मन खजुराहो के उन मन्दिरों के निकट आने वाले सभी जनों के भीतर उभार पा रही थी।

बसन्त-पन्चमी से लेकर चैत्र की अमावस्या तक यह उत्सव कम-बद्ध रूप में चलता रहा।

एक दिन बीसल के उस सहयोगी ने कहा, 'गुरु, बहुत से लोग कहते हैं यह संसार निस्सार है, केवल माया है; परन्तु मन्दिर के बाह्य भाग की इन मूर्तियों को देखकर, जिनको पत्थर से हमीं लोगों ने गढ़ा है, यह बात तो मनमें नहीं रमती। लगता है जैसे वासना का फूल ही सब कुछ हो, जैसे इस प्रकार का जीवन ही सुखदायक हो।'

बीसल बोला, 'भाई इन मूर्तियों की अश्लीलता मोहक नहीं है, इनका सुडौलापन ही आकर्षक है। माया अश्लील और बीभत्स है,

माया का रचने वाला सुडौल है। सुडौलपने का स्मरण रक्खो और बीभत्स को मनमें न बसने दो। बस!'

'माया का रचने वाला सुडौल! समझा नहीं।'

'इन मूर्तियों की अश्लीलता को मोह का रूप देने वाला उनका सुडौलपन ही है न? अंग-उपांग उनके बेडौल करदो, फिर वे सब पैशाचिक और भयावनी हो जायगी। पुरुषधन्या का काम मोहमय है, परन्तु वह स्वयं सुन्दर और सुरूप है।'

बीसल के सहयोगी का मन नहीं भरा। परन्तु किसी कुण्ठा ने उसकी जिज्ञासा का दमन कर दिया। फिर भी वह दूसरे रूप में प्रकट हुई।

'संसार में कितनी दुर्बलता है, अपनी आंखों के सामने कितने जर्जर और अस्थि-पंजर वाले नर-नारी नित्य आते जाते हैं—कितने वृद्ध और रोगग्रस्त। जीवन की निस्सारता का क्या यही वास्तविक रूप नहीं है?'

'उसके अनन्तर अवसान का? मृत्यु का?'

'हां, मैं भी यही कहना चाहता था।'

'परन्तु समय तो बाल्य, मध्याह्न, अपराह्न, अस्त और रात्रि में बँटा हुआ है, उसके एक ही अंग पर सबसे अधिक ध्यान क्यों लगाया जाय?'

'काम वासना के भिन्न-भिन्न दृश्य रूपों के साथ ही, उनकी बराबरी पर यदि जर्जर अस्थि-पंजर नर-नारियों की कुछ मूर्तियाँ भी रक्खी जायें तो कैसा रहे? लोग स्मरण रखेंगे कि किसी दिन यह अवस्था भी सुडौल देह की हो जायगी इसलिये बहुत पहले से ही उसका सामना करने के लिये जीवन को सुधरे हुये रूप में चलाया जाय।'

बीसल विचार करने लगा। कुछ क्षण बाद बोला, 'बनाऊंगा। बनाकर मंत्री महाशय के सामने रक्खूंगा। यदि उन्होंने मान लिया

तो जैसा तुमने कहा है उसी भाँति उनको रखवा दिया जायगा। साथ साथ और बराबरी पर तो वे मूर्तियाँ न रह सकेंगी, परन्तु उनके ठीक नीचे रख दी जायंगी। लोग सहज ही उनको निरख सकेंगे।'

( ३ )

बीसल और उसके सहयोगी शिल्पी मनुष्य-देह के सारे अंगों से परिचित थे, उसके निरे ढाँचे से भी उत्सव की समाप्ति के पहले ही उन लोगों ने बड़े श्रम और कौशल के साथ एक वृद्ध और वृद्धा की मूर्तियां बनाईं। मूर्तियों की हड्डी पसलियों पर पत्थर में ही, खाल उढ़ाई; सिर पर गंज, माथे पर रेखायें और चेहरे पर झुरियां, आँखें धमी हुईं, आंखों के नीचे गढ्ढे, आंखों में अभिव्यक्ति विहीनता सब राई-रत्ती स्पष्ट और सम्यक्।

बीसल और उसके सहयोगियों ने उन मूर्तियों को शिव-मन्दिर के बाह्यकक्ष में अश्लील मूर्तियों के नीचे जा रक्खा।

जनता ने देखा और मन्त्रियों ने भी।

अस्थि-पंजर की मूर्तियों को देखते ही मंत्री को एक धक्का सा लगा। अन्त में इस देह का यह होगा! बार-बार यह भाव मंत्री के मन में उठा। फिर उसकी आँख उत्सव के प्रमोदों में इधर उधर मग्न, रंग-बिरंगे वस्त्र पहने हुये हँसते खेलते नर-नारियों पर घूमी। क्या ये सब इन मूर्तियों को देखकर इसी प्रकार की विरक्ति को अपने मानस में अंकित कर सकेंगे। अंकित करने के बाद फिर? मन्त्री के मन में प्रश्न उठे। उसकी दृष्टि अश्लील मूर्तियों की ओर गई। ये प्रसून परिमल के उन्माद हैं, प्रमाद हैं और कदाचित् प्रपात। ये भी अवहेलना, उपेक्षा और ग्लानि दे सकती हैं—सम्भव है विरक्ति भी, मन्त्री ने सोचा। क्या दोनों को एक ही स्थान पर रहने दिया जाय? एक के प्रभाव का मर्दन दूसरी मूर्ति करेगी? अथवा दोनों प्रकार की मूर्तियां परस्पर सहयोग से एक ही परिणाम पर मानव को पहुँचाते रहने का क्रम स्थापित करेंगी?

विरक्ति पर। मन्त्री का विवेक निर्णय न कर सका। उत्सव के उल्लास के साथ आँख-मिचौनी सी खेलती हुई जनता के एक भाग ने भी उन मूर्तियों को नेत्रों से टटोला।

किसी ने क्षण के एक अंश में अश्लील मूर्तियों पर आँखें को घुमा कर हड्डी पसली वाली मूर्तियों पर देर तक ध्यान को ठहराया। होंठ बिदराये और चल दिया, कोई दोनों प्रकारों पर एक साथ दृष्टि डालता हुआ आगे बढ़ गया—ध्यान उसका एक पत्थर पर भी स्थिर न हुआ। कुछ लोग मंत्री के व्यक्तित्व और व्यक्तित्व को ढकेलने वाले वस्त्रों और आभूषणों के देखते रहे।

एक सुन्दरी वहां होकर निकली। अश्लील मूर्तियों को देखते ही उसका चेहरा लाल हो गया। बीसल को देखकर वह लजाई अस्थि-पंजर वाली मूर्तियों पर जैसे ही उसकी आँख गई वह कांप गई और फिर भ्रू संकुचित करके वहां से तुरन्त चली गई।

बीसल ने यह सब परखा।

मंत्री कोई भी निर्णय न कर सका।

उसने बीसल से कहा, 'तुम्हारी छेनी हथौड़े के सूक्ष्म-शिल्प पर सारे पुरस्कार न्योछावर हैं। तुम इन दो मूर्तियों को जहां चाहो रक्खो, तुम्हारे ही निर्णय पर छोड़ता हूं।'

मन्त्री चला गया। बीसल निश्चय अनिश्चय के द्वन्द्व में भूलने लगा।

## ( ४ )

बीसल के मन में किसी ने कहा, 'तुम्हारी दोनों कृतियां शिल्प कौशल की पराकाष्ठा हैं, दोनों एक ही जीवन के भिन्न भिन्न रूप हैं··· परन्तु ·····' किसी ने भीतर ही भीतर टोका।

'पर क्या सौन्दर्य अश्लीलता से अलग नहीं किया जा सकता ? क्या सुरूप की रेखायें, लोचें, लचकें वीभत्स के बाहुओं में भर देनी चाहियें ?'

बीसल ने सोचा, 'तो क्या तांत्रिक भ्रम में हैं ?'

एक क्षण उपरान्त वह एक निर्णय पर पहुँचा, 'हों या न हों, परन्तु बहुजन उनकी बातों को मानते हैं। उनकी अन्तर्निहित वासनाओं को सन्तोष देने के लिये हम लोगों के शिल्प का उपयोग किया है। हम कर भी क्या सकते थे ?'

अश्लील मूर्तियों के वीभत्स से ध्यान को हटाकर बीसल ने उनके अंग-सौन्दर्य और रचना-कौशल पर जमाया, फिर अस्थिपंजर वाली मूर्तियों को देखा।

बीसल ने जर्जरता की उन दोनों मूर्तियों को मन्दिर से हटा दिया। मन्दिर के कुछ दूर एक घेरे में खण्डित, अनगढ़ और अस्वीकृत मूर्तियों का संग्रह था। उन्हीं में बीसल ने इन दोनों मूर्तियों को रख दिया। उनकी रचना पर उसको हर्ष था और रचना के परिणाम पर विषाद।

'क्या जीवन यह नहीं है ! और क्या वह भी जीवन नहीं है ? यदि जीवन का अन्त इन हड्डियों-पसलियों में ही है और उसका विकास उन मूर्तियों में ही, तो फिर जीवन के किस अंग की मूर्तियाँ बनाया करूँ ?'

किसी ने बीसल के भीतर से उत्तर दिया, 'पसीना बहाते और हँसते-खेलते हुये यदि क्रम से अस्थि-पंजर भी बन जाओ तो चाहे तांत्रिक कुछ कहें और चाहे श्रमण-श्रावक कुछ, तो बुरा भी क्या है ?'

खजुराहो के मन्दिर-समूह के निकट ही हड्डी-पसलियों और झुर्रीदार खाल वाली वे दोनों मूर्तियाँ एक घेरे में रक्खी हुई हैं। खजुराहो के मेले में सम्मिलित होने वाले लोग इनको भी देखते हैं, परन्तु क्या वे कुछ वैसा ही सोचते होंगे जैसा बीसल ने सोचा था ?

# ज़ैनाबादी बेगम

( १ )

आम की टहनियों पर नई कोंपलें फूट निकली थीं। सूर्य की किरणें उमगी हुई मुस्कानों के साथ ठहरती ठुमकती अठखेलियाँ कर रही थीं। उन चमकती हुई लहरों में होकर मञ्जुल मञ्जरियाँ झांक झांक उठती थीं।

एक कुञ्ज में से निकल कर ज़ैनाबादी ने आम की टहनी पर अपना गोरा हाथ डाला, मानो टहनी पर कमल की पंखुरियाँ चिपक गई हों। ज़ैनाबादी ने मृदुल मधुर स्वरों में गायन आरम्भ किया। पास के एक आम पर कोयल बैठी हुई थी। वह कूकती हुई दूसरे आम को आबाद करने के लिये चली गई। ज़ैनाबादी मस्ती के साथ गा रही थी। उसकी बड़ी बड़ी आँखों से मद झर रहा था। वह बीच बीच में कान को ध्यान में निमज्जित करती थी, जैसे किसी की आहट लेरही हो। आँख की मस्ती को बटोरकर कभी कभी कुञ्जों और बीथियों के झौंकों में होकर, निगाह को भेज भेजकर, गाने पर लौटा लौटा ले रही थी।

एक कुञ्ज के पीछे से अप्सरा-रूप बांदियों से घिरा हुआ सा औरंगज़ेब आगया। ज़ैनाबादी ने मुँह फेर लिया—मानो देखा ही न हो। कण्ठ के कम्प को दबाकर वह गाती रही। थोड़ी दूर पर कोयल भी कूकती रही।

औरंगज़ेब ठिठक गया। बाँदियाँ साँस साधकर पीछे खड़ी हो गईं। ज़ैनाबादी ने कनखियों देखा। औरंगज़ेब—अधेड़ अवस्था का शाहज़ादा मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगज़ेब—स्तम्भित, चकित, अचेत सा खड़ा रह गया है। उसको अत्यन्त मोद और सन्तोष हुआ। उसका गला अधिक कांपा। लौटकर औरंगज़ेब को अच्छी तरह देखा—मानो मद उँड़ेल दिया हो। गाना बन्द होगया। आम की डाल से हाथ यकायक फिसला। उन्नत उरोजों का झीना आवरण खिसका। उसके दूसरे हाथ ने झटका देकर संभालने की चेष्टा की। वह बिलकुल ही खिसक गया। ज़ैनाबादी के छरेरे शरीर ने एक लंक खाई। ज़रा सी आड़ लेकर ज़ैनाबादी ने अपने झीने आवरण को संभाला और संवारा। सिर झुकाया। गुलाब से सजाया हुआ केश-कलाप झूम सा गया। ज़ैनाबादी ने शाहज़ादे को नतमस्तक आदाब बजाया और हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। झुके हुये सिर की सचेत आँखे थोड़ी-सी ऊपर उठीं। भौंहों से लम्बी बरोनियाँ छू गईं। गुलाबी चेहरे की मोहिनी पर जादू खेल गया। औरंगज़ेब ने यह सब देखा। परन्तु अनदेखा-सा रहा। मुँह से केवल एक प्रश्न निकला, 'यह परी कौन है?'

औरंगज़ेब के कान में उत्तर पड़ा, 'ज़ैनाबादी। हीराबाई भी इसको कहते हैं; ख़ानेज़मा की दुलारी लौंडी।'

औरंगज़ेब पीला-सा तो था ही और पीला पड़ गया। उसकी पुतलियाँ फिर गईं। पहले सिलबिला कर बैठा, फिर धड़ाम से चित हो गया।

उपस्थित बांदियों के चिन्ताकुल कोलाहल का पार न रहा। कोई ठण्डा गुलाबजल और कोई इत्र छिड़कने लगीं। कोई अपने अञ्चल के छोर का पंखा झलने लगीं।

ज़ैनाबादी भी हड़बड़ा कर पास आगई। उसने व्यग्र, व्यस्त दृष्टि से औरंगज़ेब के पीले चेहरे पर अपनी काली बड़ी बड़ी पुतलियाँ जमाईं। औरंगज़ेब की आँख की एक कोर थोड़ी-सी—बहुत ज़रासी खुली। थोड़ी देर खुली रही; फिर बन्द हो गई। मानो उसके हृदय ने उस सकरे मार्ग से कुछ पिया हो। परन्तु सिवाय ज़ैनाबादी के और किसी ने नहीं देख पाया।

कुछ बांदियां दौड़कर हरम में पहुँचीं।

( २ )

खानेज़मा मीर ख़लील औरंगज़ेब का मौसिया था। उन दिनों खानदेश का सूबेदार था। उसकी प्रधान बेगम शाहजहां की बेगम मुमताजमहल की बहिन—औरंगज़ेब की मौसी—थी। ये लोग इस समय बुरहानपूर में थे।

औरंगज़ेब की बेहोशी का हाल सुनकर बिचारी बग़ीचे में नंगे पैर बेतहाशा दौड़ी आई।

उसने देखा औरंगज़ेब पीला पड़ गया है, और मुँह से झाग आरहे हैं।

मौसी ने झपटकर औरंगज़ेब का सिर अपनी जांघ पर रख लिया। उपचारों पर उपचार होने लगे।

बार बार सवाल किया जाता था—'क्या इनको यह बीमारी कभी पहले हुई?'

सब जानती थीं कि बुख़ारों के सिवाय औरंगज़ेब को इस प्रकार का रोग पहले कभी नहीं हुआ। परन्तु उत्तर कोई नहीं दे रही थी।

एक किनारे पर खड़ी हुई ज़ैनाबादी भी मुँह लटका लटकाकर आहें ले लेती थी, उपचारों में भी सतर्कता के साथ सहयोग दे रही

थी। चेहरे से उसके चिन्ता टपकी पड़ती थी, परन्तु हृदय उल्लासमग्न था।

बार बार जो सवाल किया जाता था—'क्या इनको यह बीमारी कभी पहले हुई?' उसका उत्तर ज़ैनाबादी का हृदय तुरन्त नये नये रस के साथ दे रहा था। वह उत्तर उसको प्रत्येक बार नई उमंग और नई लहर दे दे जारहा था। उस लहर की थपेड़ होठों तक आती थी। वह उन लाल होठों को मुस्कान देना चाहती थी, परन्तु ज़ैनाबादी की दृढ़ता उन थपेड़ों को जहाँ का तहाँ लौटा देती थी।

मौसी औरंगज़ेब को उठवा कर हरम में ले गई। बहिन का लड़का ठहरा! बुढ़िया को आड़-पर्दे की अटक न थी। मौसिया और मौसी दोनों के निमन्त्रण पर बुरहानपुर आया था। दिल्ली के शाहंशाह शाहजहां का शहज़ादा और दक्षिण का सूबेदार अचानक आ पहुँचा था और बगीचे में शायद यकायक। बिचारी मौसी उस समय भयानक रोग के लक्षणों से बेतरह घबरा गई। स्वयं अपने बहिनौत की परिचर्या करना चाहती थी। इसलिये हरम में उठवा ले गई।

तीन-चार घड़ी पीछे औरंगज़ेब को होश आता दिखा। मौसी को बड़ा चैन मिला। खैरातें बांटी गईं। तसद्दुक़ और कुरबानियों के प्रण किये गये।

थोड़ी देर के लिये औरंगज़ेब की आँखें फिर झप गईं। हरम में फिर चिन्ता छा गई। जब आँखें खुलीं तब उन्होंने आसपास कुछ टटोला। एक कोने में खड़ी हुई ज़ैनाबादी पर वे एक क्षण के लिये टिकीं। ज़ैनाबादी थरथरा गई। किसी काम के बहाने से अकेले में चली गई और चिलमन में मुस्कानों पर मुस्कानें बिखेरती रही।

औरङ्गज़ेब ने अधमुदी आँखों को फिर खोला। ज़ैनाबादी न थी। व्याकुलता के साथ करवट पर करवट लिये।

जब औरङ्गज़ेब कुछ शान्त हुआ मौसी ने पूछा, 'यह कौनसी बीमारी है ? आपको पहले कभी इसका दौरा हुआ ?'

औरङ्गज़ेब ने कोई उत्तर नहीं दिया।

आधी रात तक जिज्ञासा और चिन्ता की वर्षा सी होती रही। अब औरङ्गज़ेब की ज़बान ने अपने को पाया। पहली बात जो धीमें स्वर में उसके मुँह से निकली वह थी—

'क्या मैं अकेला हूं ?'

मौसी ने बांदियों को संकेत किया। वे सब हट गईं। एकान्त हो जाने पर मौसी ने फिर सवाल किया।

औरङ्गज़ेब ने कहा, 'अगर मैं अपने रोग को बतला दूँ तो क्या आप उसका इलाज कर सकेंगी ?'

मौसी ने आतुरता के साथ उत्तर दिया, 'मैं कुरबान जाऊँ, इलाज तो क्या मैं आपके लिये अपनी जान तक दे दूँगी।'

ज़रा सा खांसने खखारने के बाद औरङ्गज़ेब ने पूछा, 'वह लड़की कौन है ? उसको ज़ैनाखानम या क्या कहते हैं ?'

मौसी ने सोचा शाहज़ादे का दिमाग़ घूम रहा है। अकुलाहट के साथ बोली, 'ज़ैनाबादी कहलाती है। नाम हीराबाई रक्खा गया है।'

'क्या हिन्दू है ?'

'जी नहीं। आपके मौसिया को यह नाम अच्छा लगा इसलिये रख दिया।'

'वही मेरी बीमारी का सबब है।'

मौसी सन्न से रह गई। औरङ्गज़ेब की सारी बीमारी ग़ायब हो गई। वह बिस्तरों में उठकर बैठ गया।

दृढ़ स्वर में बोला, 'आपने नाहक़ यह सब परेशानी उठाई। आप मेरी बात को समझ गई हों तो इलाज कीजिये। मैं ज़ैनाबादी के बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता। शायद सवेरा होने के पहले ही मेरी रूह अपना रास्ता पकड़ जाय।'

मौसी घुटनों पर सिर टेककर चुप बैठी रही। शायद उसकी जीभ तालू से चिपक गई थी।

औरङ्गज़ेब ने ज़रा तीखे स्वर में कहा, 'आप जवाब तक नहीं देतीं, फिर इलाज क्या करेंगी?'

अब मौसी का मुँह खुला।

'मैं क़ुरबान जाऊँ। मैं आपके लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ।'

'फिर रुकावट क्या है अम्मी?'

'आप उस कमबख्त खूनी को तो जानते हैं!'

'कमबख्त खूनी' से अभिप्राय अपने पति, औरङ्गज़ेब के मौसिया, खानेज़मा मीर ख़लील से था।

'मौसिया क्यों दिक़्क़त डालेंगे?'

'मैं क्या कहूं बेटा—ज़ैनाबादी उस खूनी की बांदी है, रखेली है, उसके ऐश की चीज़ है। वह शाहंशाह की भी परवाह नहीं करता। जैसे ही उससे कहूँगी पहले तो वह उस ग़रीब को मार डालेगा और फिर मुझको। मुझको अपनी जान की कोई चाह नहीं है, क्योंकि ज़िन्दगी में रक्खा ही क्या है? मगर वह बेकस मासूम क्यों यों ही तबाह की जाय?'

औरङ्गज़ेब ने माथे और दाढ़ी पर हाथ फेरा। थोड़ी देर बाद बोला, 'आप सच कह रही हैं अम्मी। मैं कोई और तरकीब करूँगा। इतनी अर्ज़ ज़रूर है, आप अभी इस बात का कोई ज़िक्र न करें।'

मौसी ने वचन दिया।

( ३ )

प्रभात होने पर औरङ्गज़ेब अपने डेरे पर आगया। उसने खाना नहीं खाया। अपने रहस्यों के सचिव और लँगोटिया यार मुर्शिद-कुली खाँ को बुलाकर प्रेमासक्ति की कहानी सविस्तार सुनाई।

कुलीखां ने पूछा, 'हज़रत, क्या प्रेम इतनी बेहोशी पैदा कर सकता है? क़िस्से कहानियों में तो सुना है, मगर हक़ीक़त आप से मालूम होगी।'

औरङ्गज़ेब ने मुस्कराकर उत्तर दिया, 'म्याँ, मैं बेहोश बिलकुल नहीं हुआ। खड़े होने की हालत में गिर पड़ता तो बदन में चोट आ जाती। इसलिये बैठ गया और फिर धड़ाम से फैल गया। सोचा था मौसी कुछ मदद करेंगी, मगर वह तो मजबूरी ज़ाहिर करती हैं। हां, मेरी बेहोशी यहां तक सही है कि मैं बेहद बेताब हूँ!'

मौसी ने जो कुछ उत्तर दिया था, औरङ्गज़ेब ने बिला लाग-लपेट के सुना दिया।

मुर्शिदकुली खां ने उत्साह के साथ कहा, 'खानेज़मां अगर खूनी हैं तो मैं सरखूनी होने का दावा रखता हूं।'

औरङ्गज़ेब ने प्रश्न किया, 'मतलब?'

कुलीखां ने जवाब दिया, 'मैं उसको अभी जाकर खतम किये देता हूं, मतलब यह है सरकार। अगर इस खून के बदले में शाहंशाह ने या और किसी ने मेरा खून चाहा तो अपने पीर और मुर्शिद के लिये सिर दे डालने में क़तई आनाकानी न करूँगा।'

मुर्शिदकुलीखां औरङ्गज़ेब को मित्र के अतिरिक्त अपना पीर और मुर्शिद भी मानता था, क्योंकि औरङ्गज़ेब पांच वक्त नमाज़ पढ़ता था, निरन्तर रोज़े रखता था और शरह की सब हिदायतों की पाबन्दी करता था। उसने शराब कभी छुई भी नहीं थी। अनेक युद्धों में वह

अपनी धीरता और वीरता दिखला ही चुका था। औरङ्गज़ेब का बड़ा भाई शरह का पाबन्द न था, हिन्दू पण्डितों की सभाओं में और गीता वेदान्त के समझने में अपना अधिकांश समय चुकाता था, उसके अन्य दो भाई शुजा और मुराद शराब और अय्याशी में मस्त रहते थे। कट्टर मुसलमानों की एक मात्र आशा औरंगज़ेब था। उसके अन्धे पुजारियों में से एक मुर्शिदकुली खां था।

औरंगजेब ने हलकी मुस्कराहट के साथ कहा, 'भाई मेरे, शरह में इस तरह का क़तल मना है। इस गुनाह के और भी काम चल सकता है।'

कुलीखां ने उमंग के साथ पूछा, 'कैसे जनाब?'

'इस तरह,' औरंगज़ेब बोला, 'कामयाबी के लिये खुदा का भरोसा करके मीरखलील से साफ़ साफ़ कह दो। इनकार नहीं मिलेगा, मुझको यक़ीन है।

मुर्शिदकुलीखां तुरन्त मीरखलील के पास पहुँचा।

( ४ )

कुलीखां को बेधड़क बात करने में संकोच नहीं हुआ। मीरखलील की आयु काफ़ी हो चुकी थी परन्तु वह जीवन का उद्देश्य हकूमत और विलास समझता था। ज़ैनाबादी को उसके अत्यन्त मनोहर सौन्दर्य के कारण हीराबाई नाम दे रखा था, जैसा कि अन्य मुसलमान नरेशों और शासकों का रिवाज़ था। वह हीराबाई को बहुत चाहता था। उसके हरम की शोभा थी, और उसके जीवन की प्रेरणा भी।

औरंगजेब के हरम में भी एक बांदी थी जो उसकी परम प्रेयसी समझी जाती थी। उसका नाम चित्रबाई रख लिया गया था। मीर-खलील उसके सौन्दर्य की ख्याति को सुन चुका था।

उसने सोचा काँटे से ही काँटा निकलेगा, घात पर घात कर दूँ तो निष्कृति मिल जायगी।

प्रस्ताव किया, 'अगर शाहज़ादा अपनी प्यारी बांदी चित्रबाई को मेरे लिये भेज दें तो मैं हीराबाई को दे दूंगा।'

मुर्शिदकुलीखां ने औरंगजेब को यह प्रस्ताव जा सुनाया। औरंगज़ेब जनाबादी के लिये पागल हो गया था। उसने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। स्वीकार करने के समय औरंगज़ेब ने जोश में आकर यहां तक कह डाला था कि 'एक चित्रबाई तो क्या जितनी को कहे उतनी हरम से मीरखलील के पास भेज दूँगा।" मीरखलील को स्वीकृति की सूचना देदी गई।

अब मीरखलील की गांठ में कोई बहाना न रहा। चित्रबाई की नूतनता के कुतूहल ने मीरखलील को झुका दिया। सुन्दरियों की अदला बदली भेड़ बकरियों की तरह हो गई।

इस अदलाबदली की चर्चा में मीरखलील ने अपनी बुढ्ढी बेगम का भी उपयोग किया था। वह बिचारी इस कीचड़ में हाथ नहीं डालना चाहती थी। पर मीरखलील चित्रबाई के रंगीले सपनों में शीघ्र मुग्ध हो गया था। बेगम के झिझक प्रकट करने पर उसने धमकी दी थी, 'अपनी जान प्यारी हो तो तुरन्त शाहज़ादे के पास मेरा सन्देशा ले जाओ।'

( ५ )

ज़ैनाबादी को पाने के बाद औरंगज़ेब को लगा, मानो स्वर्ग मिल गया। बाल्यावस्था को पार करने के उपरान्त ही वह दिल्ली के सिंहासन की लालसा करने लगा था। ज़ैनाबादी के लावण्य पर उसने इस लालसा का भी बलिदान कर दिया।

ज़ैनाबादी नाचने गाने का काम अनोखेपन के साथ करती रही थी। औरंगज़ेब के सामने उसकी कला में और भी अधिक चटक और

पैनापन आ गया। औरंगज़ेब ने अपनी सब सुधबुध हार दी और वह ज़ैनाबादी बेगम के सलोने रूप, मधुर कंठ और उसके कोमल पदन्यास पर न्योछावर हो जाने लगा।

एक रात जब वातावरण मस्ती से झूल और झूम उठा, ज़ैनाबादी ने अनुरोध किया, 'अगर अंगूर के रस से खींची हुई थोड़ी सी ले ली जाय तो क्या हर्ज होगा?'

औरंगज़ेब सोच विचार में पड गया।

ज़ैनाबादी अपने ठाठ की पूरी सजावट में थी। उसने कटाक्ष, मुस्कान, और रहस्यमय संकेत—सभी का मादक उपयोग किया। उसको अपने प्रयोगों से रस मिलता था, वह औरंगजेब को अपने रस का सहयोगी बनाने पर तुल पडी थी।

प्रमत्त वातावरण ने उसको मधुर थपकियां दीं। वह तुरन्त भूल के मिठास में पड़ गया, उसको उमर ख़य्याम का एक शेर याद आया,—कोई अन्य बोधक उपदेश ध्यान में नहीं आया,—

'अगर तू शराब को बुरा कहता है तो अंगूर पैदा ही क्यों किये?'

औरंगज़ेब ने प्याला लिया और जल्दी से गले के नीचे उतार लिया। उसे लगा जैसे किसी बीभत्स में डूब गया हो, फिर ज़ैनाबादी को टकटकी लगा कर देखा। उसकी आँखों से मादकता झर रही थी। उस निर्झर में औरंगजेब ने अपनी बीभत्स-विभीषिका को गलाने का प्रयत्न किया, ज़ैनाबादी का रूपलावण्य और भी बढ़ा हुआ, और भी अधिक प्रतीत होने लगा—उसने अपने विश्वास में ऐसा ही पाया।

इसके उपरान्त तो वह उन उंगलियों में सधे हुये कटोरों के लिये तरसा सा करता था। नमाज़, रोज़े, पाबन्दियां सब बह गईं।

( ६ )

औरंगज़ेब के इस विलासमय जीवन का समाचार दिल्ली भी पहुँच गया। शाहजहां को शायद बहुत व्यथा नहीं हुई। वह औरंगज़ेब के कट्टरपने के कारण ज़्यादा परेशान था, नृत्य संगीत और सुरासुन्दरी बादशाहों के खास इजारे समझे जाते थे। शाहजहां ने सोचा, अब दाराशिकोह को दिल्ली की बादशाही से वंचित न कर सकेगा और न दिल्ली की बादशाही का हिन्दू मुसलमानों में बांट बखरा ही होगा।

दारा ने अनुदारता के साथ काम लिया। उससे न रहा गया। बादशाह से बोला, 'जहांपनाह ने उस पाखंडी लुच्चे की पाकीज़गी और परहेज़गारी देखी!'

शाहजहां चुप रहा।

समय चुपचाप नहीं रहा। सुन्दरी ज़ैनाबादी की अठखेलियां एक दिन समाप्त हो गईं। रंग रूप मद, यौवन, उस थोड़ी सी आयु में ही देहान्त हो जाने पर, एक अमर स्मृति, एक अमिट लकीर, औरंगज़ेब के मनमें छोड गये।

औरंगज़ेब अकेले में जाकर कई बार रोया। ज़ैनाबादी की क़ब्र, जो बुरहानपुर के तालाब के किनारे, गई गुज़री की याद आज भी दिलाती है, कई दिन औरंगज़ेब के आंसुओं से सिंचती रही।

परन्तु वे आंसू हृदय में लौट गये और फिर कभी बाहर नहीं निकले। औरंगज़ेब ने ज़ैनाबादी के मरने से कुछ पहले ही शराब पीना त्याग दिया था और फिर आजन्म उसने कभी नहीं पी। नमाज़ रोज़े, सब फिर लौट आये। नृत्य और संगीत ज़ैनाबादी की कब्र में समा गये। औरंगज़ेब ने उनको फिर कभी सिर नहीं उठाने दिया।

ज़ैनाबादी रहित, कलारिक्त वातावरण में औरंगज़ेब के अश्रुविहीन हृदय ने जिस प्रकार मुग़ल साम्राज्य को चलाया उसको शायद केवल ज़ैनाबादी की सुनसान समाधि ही जानती है।

# गवैये की सूबेदारी

'जहांपनाह, आदमियों से भरी नाव को मैंने कभी डूबते नहीं देखा। देखना चाहती हूं,' लालकुँवर ने बादशाह जहांदारशाह से बड़े नखरे के साथ कहा।

बादशाह ने वासना में डूबते हुये स्वर में सकारा, 'जब चाहो तब दिखला दूँगा।'

लालकुँवर और बादशाह दिल्लीवाले महल की ऊपरी छत पर बैठे हुये हवा खा रहे थे। बरसात के दिन थे। यमुना बाढ़ पर थी। दिल्ली भयंकर अकाल में थी, एक रुपये का आठ सेर गेहूं! कुछ किसान अनाज की मोटें रखे हुये नाव से यमुना के इस पार आ रहे थे। उस लदी हुई नाव पर लालकुँवर की निगाह पड़ी और बादशाह से इठलाकर कहा, 'जहांपनाह, आदमियों से भरी नाव को मैंने कभी डूबते हुये नहीं देखा। देखना चाहती हूं।'

बादशाह के उत्तर देने के बाद उसने फिर उस भरी हुई नाव को देखा। जहांदारशाह की भी निगाह पड़ी। लालकुँवर ने अपनी नशीली आँख का जादू बादशाह पर बरसाया। इशारा काफ़ी था। बादशाह ने नाव को डुबा देने का तुरन्त हुक्म दिया। हुक्म जारी होने की देर नहीं हुई कि नाव डुबा दी गई। अनाज और किसान—दोनों इस पार लगने के पहले ही यमुना में समा गये। लालकुँवर और जहांदारशाह ने क़हक़हा लगाया।

जुलाई सन् १७१२ में दिल्ली अकाल के मारे कराह रही थी, परन्तु बादशाह जुलाई की वर्षा में भी दिवाली मना रहा था। क्योंकि कठिनाइयों को पार करके आराम की ज़िन्दगी पाई थी। महीने में तीन बार शान के साथ चिराग़ जलाये जायं—यह फ़रमान जारी हो चुका था। दो रोशनियों में ही दिल्ली का तेल खतम हो गया, और भाव रुपये का आध सेर! तीसरी रोशनी २५ जुलाई को होनी थी। तेल था नहीं, इसलिये घी की बारी आई। घी के दिये जले। दिल्ली जगमगा उठी।

उस रात लालकुँवर बहुत प्रसन्न थी। लालकुँवर का असली नाम इम्तियाज़महल था। परन्तु बादशाहों और उनकी प्रेमिकाओं को हिन्दू नाम पसन्द थे, इसलिये इम्तियाज़ बेगम—लालकुँवर हो गई थी।

घी के चिरागों की जगमगाहट के बाद फुहार पड़नी शुरू हो गई। लालकुँवर के सुन्दर पांव नाचने के लिये और बादशाह का दिल रीझने के लिये बेताब हो उठे। रंगमहल में नृत्यगान के उपकरण इकट्ठे किये गये।

लालकुँवर वेश्यापुत्री थी। बहुत सुन्दर और कोमलांगी। नाचने में कमाल हासिल था उसे। उसके कई भाई थे। लालकुँवर के सौन्दर्य और नृत्यकला ने उन सबको जागीरें, सरदारी और मर्तबे दिला दिये थे। इनमें से एक का नाम नियामतखां कलावन्त था। वह बहुत बड़ा गवैया था—वास्तव में महान कलाविद। इसलिये लालकुँवर के सब भाइयों में बादशाह का सबसे बड़ा कृपापात्र।

उस रात के लिये तय हुआ कि नियामतखां गाएगा और लालकुँवर नाचेगी।

जहांदारशाह ने फ़रमाइश की, 'उस्ताद, आज नाच, गान और ताल की लय की पूरी जांच होनी है।'

नियामतखाँ ने नीची नज़र किये हुये कहा, 'जहांपनाह का जो हुक्म हो।'

बादशाह बोला, 'आपके गीत के बोल तिताले में शुरू हों, फिर झपताल, रूपक और चौताले की गश्त करते हुये तिताले के सम पर आयें, तब बात है।'

लालकुँवर बादशाह के बराबर मख़मली और ज़रतारी तकिये के सहारे मसनद पर बैठी थी। सामने सोने का गिलौरीदान और हुक्का रखा था। सोने की ही सुराही में ईरान की बढ़िया शीराज़ी शराब। प्याले लालकुँवर के नाज़ुक हाथों की प्रतीक्षा में थे। लालकुँवर ने सुराहीबन्द परी को प्याले में ढाल कर बादशाह की ओर बढ़ा दिया। बादशाह ने प्यार और आदर के साथ प्याले को ग्रहण किया। उसके होंठ चुस्की लगाने लगे।

नियामतखां चिन्ता से सिर नीचा किये था। लालकुँवर ने मुस्कराकर कहा, 'आप फ़िक्र क्यों करते हैं? बादशाह सलामत की दुआ से सब कुछ हो सकता है।'

नीची निगाहों कलावन्त ने बादशाह से विनय की, 'आलीजाह संगीत के उस्ताद हैं। इतना कठिन काम बतलाया गया है कि गुलाम के होश कूच कर रहे हैं। तिताले के सम के लिये इन सब तालों का एक आवर्त हज़ारों मात्राओं का होगा। कई आवर्तों पर आलीजाह के सामने रस पेश किया जा सकेगा। ज़रा भी चूका तो गुलाम की गर्दन उड़ा दी जायगी।'

जहांदारशाह ने मुस्कराकर कहा, 'सो नहीं होगा, उस्ताद। तुम्हारी कलावन्ती में चार चाँद लगाने के लिये ही मैंने यह ज़रा टेढ़ा सवाल उठाया है। जिस वक्त तुम्हारा स्वर इनके घुँघरुओं का साथ देगा, संगीत के इतिहास में सोने के हरफ़ जड़े जायंगे। शुरू करो। घुँघरू सँभालो, लालकुँवर।'

लालकुँवर ने बादशाह को एक प्याला और दिया। नियामतखाँ बोला, 'आलीजाह, ग़रीबपरवर......'

जहांदार ने कहा, 'उस्ताद साज़ तुम्हारे कमाल का इन्तज़ार कर रहे हैं; और हां, तानें भी इन तालों में अलग अलग और फिर मिला-मिलाकर बुनी जायं। इनाम भी ऐसा दूँगा कि हमेशा याद करोगे।'

लालकुँवर ने इठलाकर चांदी के खूबसूरत घुँघरुओं से अपने लचीले पैर सजाये और खड़ी हो गई। बोली—

'उस्ताद, ज़्यादा सोच विचार की ज़रूरत नहीं है। तंबूरा संभालिये। आप तो इस फ़न के उस्ताद हैं। छेड़िये, इनाम आपकी करामात की बाट जोह रहा है, और मेरे घुँघरू बेसब्र हुये जा रहे हैं।'

नियामतखाँ ने बादशाह की दूर से क़दमबोसी की और तम्बूरे को छेड़कर ध्यान लगाया। तंबूरे की छेड़छाड़ का साथ कण्ठ स्वर ने दिया और लालकुँवर ने सुरीले घुँघरुओं की पहली छम दी।

नियामतखां ने फ़रमाइश के अनुसार गाया और लालकुँवर ने अपनी पूरी मौज के साथ नाचा। बादशाह कला की वर्षा में मस्त हो गया; थोड़ी देर खुद भी नाचा।

समाप्ति पर बादशाह ने लालकुँवर को लिपटा लिया—उसका यही पुरस्कार था, वह उसको लगभग दो करोड़ रुपये के इनाम दे चुका था! और नियामत खाँ से कहा, 'सुना है इन दिनों मुलतान की सूबेदारी खाली है। तुम्हारे आज के कमाल पर इस सूबेदारी को न्योछावर करता हूँ; तुम्हें मुलतान का सूबेदार बनाता हूँ। कल वज़ीर को इत्तला दे दी जायगी।'

नियामतखाँ फूला नहीं समा रहा था।

× × ×

सूबेदारी बख्शी जाने की रात के बाद कई दिन हो गये, परन्तु वज़ीर ने कोई सूचना नियामतख़ां के पास नहीं भेजी। नियामतख़ां ने एक दिन निश्चय किया।

बहुमूल्य पगड़ी, फेंटा, अँगरखा और पायजामा साज-संवारकर और मूंछों पर इत्र की फुरेरियां छुआकर, तामझाम पर सवार नियामतखां वज़ीर की ड्योढ़ी पर पहुँचा। वज़ीर का नाम जुलफ़िकारखां था। ड्योढ़ी का अदब निभाने के बाद नियामतख़ां जुलफ़िकार के सामने पहुँचा।

बहुतसे सरदारों की कोठियाँ और हवेलियाँ ज़ब्त की जाकर नियामतख़ाँ और उसके भाइयों को दी जा चुकी थीं। यह बात जुलफ़िकार को याद थी। कुढ़न को मन के भीतर दबाकर जुलफ़िकार ने उस्ताद को बिठलाया। पान दिया और पूछा, 'कैसे तकलीफ़ की, उस्ताद?'

उस्ताद ने उत्तर दिया, 'हुज़ूर तो सब जानते हैं। बादशाह सलामत ने मुलतान सूबे की सूबेदारी बख़शने का हुक्म काफ़ी अरसा हुआ तब दिया था। बन्दे को अभी तक उसकी कोई ख़बर नहीं मिली।'

जुलफ़िकार ने मुस्कराकर कहा, 'उस्ताद, ऐसे बड़े काम जल्दी और आसानी से नहीं होते।'

नियामतख़ाँ ने पूछा, 'बन्दे पर क्या कोई नाराज़ी है हुज़ूर की?'
जुलफ़िकार ने जवाब दिया, 'नहीं, उस्ताद! गाड़ी सिर्फ़ एक जगह अटक रही है। मैं सूबेदारी की सनद तो इसी वक्त दे दूँ, मगर वज़ीर का हक़-दस्तूर अदा न होने की वजह से देर हो रही है।'

नियामतख़ाँ ने ज़रा खांसा, गला साफ़ किया और कहा, 'हुज़ूर, हमलोग तो कलावन्त हैं। रुपया-पैसा हमारे पास कहाँ?'

वज़ीर मुस्कराकर बोला, 'हक़-दस्तूर में आपसे रुपया-पैसा न लिया जायेगा।'

'मुझको क्या देना पड़ेगा, हुज़ूर?' नियामतखाँ ने पूछा।

वज़ीर ने उत्तर दिया, 'वैसे तो हर ओहदे के लिये अलग अलग हक़-दस्तूर नक़दी में मुक़र्रर है, मगर आपसे नक़द न लेकर एक हज़ार तम्बूरे लूँगा।'

× × ×

नियामतखाँ को आश्चर्य हुआ। 'एक हज़ार तम्बूरे! क्या करियेगा इतने तम्बूरों का?'

वज़ीर ने बेतकल्लुफ़ी के साथ कहा, 'इससे आपको क्या बहस, उस्ताद! कुछ न कुछ तो करूँगा ही। अगर मन्ज़ूर हो तो लाइये और मुझसे सनद ले जाइये।'

नियामतखाँ ने स्वीकार किया।

वज़ीर के यहाँ से आते ही नियामतखाँ ने तम्बूरे इकट्ठे करने शुरू कर दिये। चेले-चेलियों से इकट्ठे किये; दिल्ली के क़रीब-क़रीब में जितने मिले जमा किये। परन्तु एक सप्ताह में केवल दो सौ एकत्र कर पाये। चोटी का पसीना एड़ी तक बहाया, चिन्ताओं में रातें गँवाईं, परन्तु दो सौ से अधिक जमा न कर पाये।

नौकरों के सिर लदवा लदवाकर तम्बूरे वज़ीर की कोठी पर जमा किये गये। वज़ीर अपनी माँग पर डटा हुआ था—टस से मस न हुआ। 'अभी तो आठ सौ की कसर है, उस्ताद साहब!'

उस्ताद परेशान हो उठे। बाक़ी के बदले में रुपया देने की प्रार्थना की। वज़ीर न माना। नियामत ने लाचारी ज़ाहिर की, परन्तु वज़ीर पर छाँह तक न पड़ी। निराश होकर उस्ताद ने बादशाह की शरण पकड़ी। देखूँ, सूबेदारी कैसे नहीं मिलती? बादशाह को भी ज़रा ताव आया। हैरान था कि आज्ञा का पालन क्यों नहीं हुआ।

वज़ीर को बुलाया गया। ज़ुलफ़िकार को मालूम था कि लाल-कुँवर के हठ पर बादशाह ने ग़रीब किसानों और अनाज से भरी हुई नाव डुबवा दी थी और वह प्रतिवाद तक न कर सका था। उसने अपने मन को दृढ़ किया।

बादशाह ने शान्त भाव से पूछा, 'वज़ीरुद्दौला, अभी तक उस्ताद नियामतख़ाँ को मुलतान की सूबेदारी की सनद क्यों नहीं दी गई?'

वज़ीर ने बादशाह के सामने की ज़मीन को चूमकर उत्तर दिया, 'जहांपनाह, अभी आठ सौ तम्बूरे उस्ताद के यहाँ से आना और बाक़ी हैं।'

बादशाह ने ज़रा विस्मय के साथ सवाल किया, 'इतने तम्बूरों का क्या करोगे, वज़ीर?'

वज़ीर ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, 'आलीजाह, सल्तनत में क़रीब एक हज़ार सरदार और मन्सबदार हैं। उनसे तलवारें लेकर उस्ताद के घर भिजवा दूँगा और उन लोगों को एक एक तम्बूरा थमा दूँगा। फिर जैसी मर्ज़ी जहांपनाह की हो।'

उस्ताद के मुँह से निकल पड़ा, 'ऐं!'

वज़ीर के मुख से निकला, 'जी, उस्ताद।'

बादशाह हँस पड़ा। बोला, 'उस्ताद, मामला ज़रा गड़बड़ में पड़ गया है। कुछ और देखूँगा।'

# टूटी सुराही

मुगल शाहन्शाह जहांगीर ने फरमान निकाला—

'हमारे दरबार में अगर कोई भी शराब पीकर आयेगा या शराब की जिक्र तक करेगा तो उसको कोड़े लगाये जायंगे, मुँह काला किया जायगा और गधे पर चढ़ाकर शहर भर में घुमाया जायगा।

आदेश को सुनकर लोग सन्नाटे में आ गये। मुल्लाओं ने सोचा अब धर्म ईमान के राज्य का युग फिर आ रहा है। बहुत से पीने वालों ने आज्ञा को रात के लिये भी लागू किया और डर के मारे शराब को छोड़कर अफीम गांजा या भंग पीने लगे। इनके बन्द करने की बात तो फरमान में थी ही नहीं, और होती भी तो फिर चरस, धतूरा इत्यादि कुछ न कुछ और ढूँढ़ निकालते।

जहांगीर दिन में सजगता की मूर्ति बनकर सारा राजकाज कर रहा था। रात में सूर्य नहीं रहता। और रात में तारे टिमटिमाते रहते हैं चन्द्रमा शरमाता शरमाता सा नभ में आता है—धुंधले को उजियाला ढूंढ़ता हुआ सा।

आगरे के क़िले के भीतर जहां जहांगीर की रात बीतती थी कई हौज़—कांच के हौज़—भरे रखे जाते थे। किसी में गुलाब के अर्क, किसी में केवड़े का, किसी में मोतिये का; और कुछ हौज़ में शराब अर्गबानी, शीराजी, तरह तरह की। पियो, चाहे जितनी पियो, यहां तक कि गोते लगा लगा कर पीना चाहो तो पियो।

क्योंकि फ़रमान दिन को सीमित करता था, रात को नहीं।

एक लौंडी पर बड़े खुश हुये जहांगीर। शबनम। ओस जैसी आबदार। ओस के चमत्कार जैसा उसका रूप लावण्य, सौन्दर्य। लौंडी बादशाह की स्नेह कृपा में डूबने उतराने लगी। चेहरा खिल गया, मुस्कान ओठों पर बरस गई। हाथों में ओज और पैरों में चपलता आ गई। उल्लास के मारे चौथ की चाँदनी पूर्णिमा में छिट-कती सी दिखलाई पड़ी और तारे उल्लास में थिरकते हुये से। वह बादशाह के हर एक हुकुम को बजा लाने के लिये व्यग्र हो उटी। अनगिनत उपस्थित बांदियों में अकेली एक। सम्राट के ओठ की फड़कन पर तुरन्त आज्ञा पालन के लिये अपने हृदय के प्रत्येक अंश को न्योछावर हो जाने पर शबनम ने अपने को उद्यत पाया।

बादशाह ने हुक्म दिया, 'शबनम' अंगूरी वाले हौज़ में से एक सुराही भर लाओ।'

आज्ञा पाकर शबनम ने मानों सब कुछ पा लिया। दौड़ी। सुराही उठाने की देर थी कि हौज़ में डाली, भरी और दौड़ते ही लाई। जितनी वह मुस्करा रही थी सुराही में उतनी चंचल अंगूरी भी न मुस्करा रही होगी।

परन्तु उसका पैर फिसला। प्रयास करने पर भी न संभल पाई और धड़ाम से जा गिरी। सुराही चकनाचूर हो गई। अंगूरी फ़र्श पर फैल गई। फर्श भी कीमती ईरानी कालीन का—और बादशाह के ही सामने! जहाँ बेगमें और अनेक बांदियां भी थीं। वहां गिरने को थी वह!

मद से ढली हुई बादशाह की आंखें फैल गईं और आँख की डोरें लाल हो गईं। ओठों की मुस्कान चली गई। परन्तु ओठ फड़के। ओठों में से निकला, 'हमारे ही सामने यह गुस्ताखी! यह कमीनी हरकत!! ले जाओ इसको!! इसी वक्त क़िले की दीवार से

नीचे फेंक दो !!! ऐसा फेंको कि ठीक इसी तरह से चकनाचूर होजाय जैसे सुराही हुई है, और ठीक इसी तरह से बिखर भी जाये !!!!'

जहांगीर बादशाह की आज्ञा का तुरन्त पालन किया गया। रोती विलपती शबनम को पहरेदारों ने पकड़ा और क़िले की दीवार पर से नीचे फेंक दिया। शबनम सुराही की तरह चकनाचूर हो गई और ईरानी कालीन पर बिखरी हुई अंगूरी की तरह क़िले के नीचे बिखर गई। ओस का चमत्कार उस अंधेरे धुंधले में समा गया। जब सिपाहियों ने आज्ञा पालन की सूचना जहांगीर को दे दी तब उसको संतोष हुआ। बादशाह की आज्ञा का पालन बांदियाँ और सिपाही ठीक तौर पर न करें तो इतना बड़ा साम्राज्य कितने दिन चल सकता है? जहांगीर के हृदय ने भर्त्सना नहीं की।

( २ )

महलों में सब कुछ मिल सकता था, परन्तु शिकार के लिये जंगली जानवर नहीं मिल सकते थे। दिल्ली और आगरे के आसपास भी शिकार थी, किन्तु शेरों, चीतों, और हाथियों के लिये बुन्देलखंड प्रसिद्ध था। बेगमों, बांदियों और फौजफांटे के साथ जगल में शिकार खेलने के लिये आये। खूब शिकार हुआ। बादशाह प्रसन्न हुये। आसपास की दुनियाँ में हर्ष छा गया। परन्तु हर्ष के उस प्रवाह में एक बड़ी बाधा जा अटकी।

बादशाह का प्यारा हाथी दलगन्जन बीमार पड़ गया। दलगन्जन क्या बीमार पड़ा, मानो सारी शाही छावनी बीमार पड़ गई। पूरा लश्कर चिन्ता निमग्न हो गया। वैद्य, हकीम, लालबुझक्कड़ सभी हाथी का इलाज करने के लिये उमड़ पड़े, परन्तु किसी का वश चलता नहीं दिखलाई पड़ता था।

बादशाह के लश्कर में बुन्देलखण्ड के राजा भी थे। उनको किसी ने समाचार दिया, ललितपुर के पास सिरसी गांव में एक योगी हैं, वे हाथी को अच्छा कर सकते हैं।'

परन्तु योगी को हाथी के पास लावे कौन? बीमार हाथी तो उनके पास जा नहीं सकता था।

बादशाह को भी योगी के बल का पता दिया गया और सिरसी गांव का। परन्तु बादशाह की हिम्मत योगी को पकड़ बुलाने की न पड़ी।

एक राजा से, जो बादशाह का पारिषद और मित्र भी था, कहा, 'किसी तरह योगी महाराज को ले आओ, अहसान मानूंगा।'

बादशाह का इतना कहना राजा के लिये आकाशवाणी का काम कर गया। राजा योगी के पास गया।

राजा ने इलाज करने के लिये योगी के निहोरे किये। उन्होंने मान लिया। परन्तु एक शर्त रक्खी।

'हाथी को यहीं लाओ।'

'महाराज, हाथी यहाँ कैसे लाया जा सकता है?'

'मैं वहां कैसे जा सकता हूं?'

'यदि हाथी मार्ग में मर गया तो शाहन्शाह को बड़ा दुःख होगा और क्रोध भी।'

'और मैं यहां से वहां जाऊँगा तो मेरा व्रतभंग हो जायगा और तप खण्डित।'

'बादशाह क्रुद्ध होने पर फिर कोई आगा पीछा न देखेगा। मेरा राज्य मिट जायगा, और आपकी तपस्या का क्या होगा? उसके संबंध में कुछ भी कहने का साहस नहीं है मुझमें।'

'वह मुझको पीड़ा पहुँचाने की कुचेष्टा करेगा, यही कहना चाहते हो न ? तुम जानते हो मेरा एक तीसरा नेत्र भी है ? जिस समय उसको खोलूंगा आग की वर्षा हो उठेगी और दिल्ली की शाहन्शाही प्रलय में डूब जायगी।'

राजा के भीतर से किसी ने ठोकर सी मारी, ललितपुर के पास ही जो देवगढ़ के मन्दिर हैं, जब किसी पहले बादशाह ने उनको तुड़वाया तब कहर बरसाने वाला क्या यहां कोई भी न था ?' परन्तु भीतर की इस स्तब्ध ध्वनि को राजा ने वहीं का वहीं दबा दिया। बोला, महाराज मेरे ऊपर, बुन्देलखण्ड के ऊपर आपके उपकार का ऋण सदा बना रहेगा। यदि हाथी यहां लाते लाते मार्ग में ही समाप्त हो गया तो आपके तपोबल के कारण बादशाह आपका तो कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा, पर मैं मिट्टी में मिला दिया जाऊँगा और यहाँ की जनता विपद में पड़ जावेगी।'

'हाथी को यहीं लाओ' योगी यही कहते रहे।

'महाराज, बादशाह ने एक बांदी को जरा सी गलती पर प्राण दंड दिया था।'

'मैं बांदी नहीं हूं। उपचार करवाना हो तो हाथी को यहीं लाओ।' योगी ने फिर कहा।

राजा को क्षोभ के कारण कुछ साहस हुआ।

राजा ने निवेदन किया, 'क्या महाराज, हाथी यहां लाये जाने पर अच्छा हो जायगा ? आप तो अपने योगबल से भविष्य की इस बात को अभी बतला सकते हैं।'

योगी राजा के प्रश्न की अन्तर्निहित व्यञ्जना को समझ गये, परन्तु रुष्ट नहीं हुये।

बोले, 'यह नहीं बतलाऊँगा।'

योगी के अटपटे ढंग से राजा का हठ पिघल गया।

( ३ )

राजा ने डरते डरते बादशाह को योगी का उत्तर बहुत मुलायम बना कर सुनाया। कहा, 'जहाँपनाह उन सरीखा महात्मा आजकल ढूढे से भी न मिलेगा कहीं। बादशाह को राजा और योगी के अनुरोध को स्वीकार करने में कोई कठिनाई अवगत नहीं हुई।

उसने सोचा, 'वैसे भी मर रहा है। रास्ते में या सिरसी में जाकर मर जायगा तो यहां तो मरा हुआ न देखूंगा।'

कई पहियों का एक भारी भरकम ढाचा बनाया गया और हाथी को उस पर रखा गया। कई जोड़ी बैल उस ढाँचे को काफी परिश्रम के उपरान्त सिरसी ले आये राजा भी साथ मे आया।

योगी ने बीमार हाथी का अच्छी तरह निरीक्षण किया।

उस ढाँचे पर चढ़ाने, उस पर से उतारने और मार्ग के भयंकर धक्कों ने हाथी की बीमारी के होश ठिकाने लगा दिये थे। शाही छावनी के प्यार दुलार और बार बार की नई दवा दारू से उसका पिंड छूट गया था।

योगी को देखते ही—या योगी ने उसको देखते ही पाया—हाथी मरण की दिशा में नहीं स्वस्थता की दिशा में पहुँच रहा है। और राजा ने देखा, जनता ने भी देखा, हाथी कुछ समय उपरान्त बिलकुल चंगा हो गया। बादशाह के पास तो समाचार घड़ी घड़ी पहुँचता रहता था, बुन्देलखण्ड भर में समाचार जंगल की आग की तरह फैल गया।

योगी ने बिना किसी दवा दारू के बादशाह के हाथी को अच्छा कर दिया।

परन्तु योगी जानते थे।

उनके भीतर भीतर एक आवाज उठी, 'मुझको झूठ से सचाई की ओर ले चलो।'

योगी ने उन लोगों से कहा, 'मैंने कुछ नहीं किया! मुझमें कोई योगबल नहीं। मैं तो प्रकाश को ढूंढ़ता फिर रहा हूं जो अभी तक नहीं मिला है।'

परन्तु किसी ने भी योगी की बात का विश्वास नहीं किया। न उस राजा ने और न सम्राट जहांगीर ने।

जहांगीर ने राजा से पूछा, 'योगी महाराज कैसी जगह में रहते हैं?'

राजा ने उत्तर दिया, 'एक कुटिया में जहांपनाह फूस और पत्तों की एक छोटी सी कुटिया है।'

बादशाह ने उत्साह के साथ कहा, 'दलगंजन के बचाने वाले उन महात्मा के स्थान पर एक मठ बनेगा।

'परन्तु वे तो कुछ भी नहीं चाहते। बिलकुल बेलौस हैं,' राजा बोला।

'लेकिन मैं जो चाहता हूं।' जहांगीर ने हठ किया, 'जब मठ बन जायगा तब मैं यहां से टलूंगा।'

'जो आज्ञा जहाँपनाह की।' राजा ने निवेदन किया, 'परन्तु जहाँपनाह वे मठ में नहीं रहेंगे। बहुत पहुँचे हुये हैं—कहते थे, मैंने कुछ नहीं किया! मुझमें कोई योगबल नहीं, और न जाने क्या क्या।'

बादशाह का हठ और भी दृढ़ हुआ, 'मठ में वे न रहेंगे तो उनके चेले तो रहेंगे, और, न सिर्फ़ मठ ही बनेगा बल्कि छः गांव जागीर में लगाता हूं जिनसे मठ का खर्च सदा चलता रहे।'

राजा सुनकर दंग रह गया, परन्तु शाहन्शाह सम्राट थे, क्यों न ऐसा हठ करते? क्यों न करते? बादशाह की आज्ञा से मठ बन गया और छः गांव भी जागीर में लगा दिये गये।

राजा ने सोचा यदि महाराज उस समय आगरे में होते तो शबनम जो कि सुराही की तरह टूट चुकी थी उसकी उस बिखरी हुई बूंद को अवश्य जोड़ देते।*

---

* सिरसी झाँसी जिले में एक अच्छा छोटा सा गांव है। है उसमें जहाँगीर के जमाने का मठ बना हुआ है। मठ के चारों ओर क़िले की जैसी पक्की दीवार है। इसको छः गाँव बादशाह जहाँगीर ने जागीर में लगाये थे। उनमें से अधिकाँश उक्त योगी के उत्तराधिकारी महन्तों ने रहन रख दिये और वे अदालत की डिक्री में नीलाम हो गये। इस जागीर का कुछ अंश वर्तमान महन्त के पास अब भी है। इसी रहन के सिलसिले में महन्त के एक मुकदमें की पैरवी मैंने की थी जिसमें जहाँगीर की दस्तखती सनद देखी गई थी। सनद में हाथी की बीमारी और योगी द्वारा उसके अच्छे किये जाने का वर्णन है। जागीर में छः गाँव लगाने का कारण भी यही दिया गया है। गाँव की दस्तूर देही में भी उसका हवाला है। शराब की सुराही के अकस्मात और अनचाहे टूट जाने पर एक सुन्दर और जवान दासी का जहांगीर की आज्ञा से फिकवाया जाना और उसका चूर-चूर हो कर मर जाना भी ऐतिहासिक घटना है।

# शेरशाह का न्याय

वह नहा रही थी। ऋतु न गरमी की, न सर्दी की। इसलिये अपने आंगन में निश्चिन्तता के साथ नहा रही थी। छोटे से घर की छोटी सी पौर के किवाड़ भीतर से बन्द कर लिये थे, घर की दीवारें ऊँची नहीं थीं, घर में कोई था नहीं, इसलिये वह मौज के साथ नहा रही थी।

सुन्दरी थी, युवती, गोरी नारी। पानी के साथ हँसते मुस्कराते अठखेलियां कर रही थी।

पठान बादशाह शेरशाह सूरी का शाहज़ादा इस्लामशाह झूमते हुये हाथी पर सवार, उसी घर के सामने वाली सड़क से चला आ रहा था, कारचोबी, जरतार की अम्बरी, सुनहला रूपहला हौदा, गहरे हरे रंग की चमकती हुई मखमल की चांदनी, हौदे पर चमकते हुये मोतियों की झालरें, चांदनी के सुनहले बेलबूटों से दमक में होड़ लगाने वाली।

हौदे में शाहज़ादे के घुटने के पास ही पच्चीकारी के काम वाला सोने का पानदान भी रक्खा था। पानों पर सुनहली वर्क चढ़े हुये। कुछ उसके मुँह में भी थे। वर्क की एकाध चिन्दी होठों की मुटाई और कोनों पर थी, वह मज़े में पान चबा रहा था, धीरे धीरे मिठास ले रहा था।

'बाअदब, बाक़ायदा होशियार! जानआलम, शाहज़ादा जिन्दाबाद!' हरकारे ने पुकार लगाई। वह युवती एक हाथ अधभरा पानी

का लोटा लिये, दूसरे हाथ से कमर के नीचे के गीले वस्त्र को संभालती हुई, खड़ी होकर, पुकार की दिशा में देखने लगी।

शाहज़ादे का हाथी उसके घर के सामने आ गया। हाथी दीवारों से कुछ ऊँचा बैठता था। हाथी पर सवार शाहज़ादा तो और भी बहुत ऊँचा।

शाहज़ादे ने युवती को देखा। जान पड़ा जैसे कमल के पुष्प पर से मेह की बूँदें ढलक रही हों। हाथी को रोक लिया। युवती को आँख गड़ा कर देखने लगा। युवती ने तड़क भड़क वाले हौदे को देखा, शाहज़ादे को देखा, शाहज़ादे की पैनी आँखों को देखा। सूखे कपड़े दूर रक्खे थे, गीले कपड़ों से शरीर को ढकने सभालने के लिये समय ही न था युवती ने कपड़े का काम हाथों से लिया, मुँह फेरा और बैठने वाली ही थी कि उसके शरीर पर पान की चार पाँच बीड़ियां आयीं। टकराईं और नीचे जा गिरीं। सोने के वर्क जगह जगह देह में चिपक गये। युवती ने चौंककर फिर उसी दिशा में मुँह किया, शाहज़ादे की अंगुलियों में सोने के वर्कों की कुछ चिन्दियां चिपटी थीं। उंगलियाँ भीगी आंखों पर गईं, फिर हृदय पर और तुरन्त खुले हुये डिब्बे के ढकने पर। मुस्कराहट थी, आँखों में पैनापन। युवती ने एक क्षण में सब देख लिया और थरथराकर बैठ गई। पीठ फेर ली। शाहज़ादे का हाथी आगे बढ़ा। फिर पुकार लगी, 'बाक़ यदा बाअदब होशियार! जानआलम, शाहज़ादा जिन्दाबाद!'

( २ )

कुछ क्षण उपरान्त युवती ने डरी हुई छिपी हुई आँखों दरवाज़े की तरफ़ देखा। बन्द था। ऊपर की ओर देखा, वहाँ न हाथी का हौदा था, और न हाथी पर सवार शाहज़ादा। परन्तु पान की बीड़ियां आसपास पड़ी थीं, और देह पर सोने के वर्कों की चिन्दियां कई जगह पर चिपकी थीं। उनमें से एकाध उसको दिखलाई भी पड़ रही थी,

इधर उधर देखा, पान की बीड़ियों को देखा उन चिन्दियों को देखा और टटोला। कुछ चिन्दियां टूट गईं, कुछ जहां की तहां रहीं। जो चिन्दियां उंगलियों पर रह गई थीं उनको धूल से छुटाया।

युवती वेग के साथ भीतर से ईंधन लाकर आंगन में जमा करने लगी। ढेर ऊँचा होगया। किसी ने दरवाज़े की कुण्डी खटखटाई। युवती ने अपने कपड़े की ओर देखा। कुछ सूख गया था, कुछ अब भी गीला था। कुण्डी फिर खटकी और आवाज़ आई—'खोलो भी, क्या कान बन्द कर लिये हैं?'

उसके पति की आवाज़ थी।

युवती का सूखा चेहरा तमतमा गया। किवाड खोलकर फिर आंगन में आई।

पति हलवाई की दूकान किये था। कपड़े धुयें से धुँधले, उनपर जगह जगह घी और तेल की कीट। चेहरा भी धुआंदार। युवक होते भी लगता था जैसे ज़्यादा अवस्था का हो। पत्नी के काले बाल सूखे गीले बिखरे हुये, धोती अधसूखी।

थके स्वर में बोला, 'अभी तक नहाया नहीं!'

पत्नी ने पीठ किये हुये कहा, 'हुं।' उसके कन्धे के कुछ नीचे सोने के वर्क का एक टुकड़ा चमक रहा था। हलवाई की दृष्टि गई। पान के कुछ खुले कुछ बन्द बीड़े इधर उधर पड़े देखे। उनपर अधटूटे वर्क हिल रहे थे। फिर उसकी आँख आंगन में चुने हुये ईंधन के ढेर पर पहुँची। समझ में नहीं आरहा था। पूछा, 'यह सब क्या है? ये पान कहाँ से आये? तुम्हारे कन्धे पर ये काहेकी चिन्दियाँ चमक रही हैं?'

'मैं तुम्हारे काम की नहीं रही' पत्नी ने वैसी ही पीठ किये हुये उत्तर दिया।

'क्या?'

'हां।'

'कैसी हां ! क्या कह रही हो ! मेरी आबरू नाश करने यहाँ कौन आया ! दिन दहाड़े डाका कौन डाल गया ? और इस इतने बड़े आगरा शहर में !

बादशाह की नाक के नीचे !!

'घर में कोई नहीं आया ?'

'घर में कोई नहीं आया और तुम्हारे काम की नहीं रही ! क्या बक रही हो ! पागल हो गई हो क्या ?'

हलवाई पान की उन बिखरी हुई बीड़ियों की ओर देखने लगा। पत्नी ने गला साफ किया।

बोली, 'बादशाह का लड़का हाथी पर सवार घर के सामने से निकला था उसने मुझको नहाते देख लिया और मेरे ऊपर ये बीड़ियाँ फेंक दीं। अब मैं तुम्हारे काम की नहीं !'

'बस इतना ही, या कुछ और ?'

'और कुछ नहीं,'

हलवाई ने चैन की साँस ली, पीठ पर हाथ रक्खा, पीठ पर से धोती थोड़ी सी हटाई, वहाँ सोने के वर्क की कुछ चिन्दियाँ और चिपकी थीं। हलवाई उनको छुटाने लगा।

'मैं तुम्हारे काम की नहीं रही।' युवती हठ कर रही थी।

तुम तो हो मूर्ख हलवाई ने सान्त्वना की,—'नहाओ और रोटी बनाओ, मुझे भूख लग रही है।'

'नहीं, अब मैं जियूँगी नहीं।' पत्नी ने दूसरी ओर मुँह फेर कर कहा। उसका चेहरा सूख गया था और आँखें लाल थीं।'

हलवाई का ध्यान लकड़ियों के ढेर पर जमा।

'ईंधन यहाँ क्यों ला धरा है ?'

'ईंधन नहीं है, मेरी चिता है। इस पर जलूँगी, अभी अपना दाह संस्कार करूंगी।'

'कोई बात भी हो ? व्यर्थ ही बात का बतङ्गड़ खड़ा कर रही हो। प्राणों के साथ इस तरह का खिलवाड़ करने से क्या बन जायगा ?'

'तुम क्या जानो।'

हलवाइन अपना हाथ छुटाकर लकड़ियों के ढेर की ओर बढ़ी।

'मैं तुम्हें यह न करने दूँगा। कौन कहता है कि मेरी नहीं रही ?'

'कोई कहे या न कहे, मैं तो कहती हूँ। मेरे काम में आड़े मत आओ। हटो।'

हलवाई उस सुन्दर मुख की भयंकर रेखाओं को देख कर सकपका गया। विकट कठिनाई के निवारण के लिये हलवाई घर से बाहर निकल पड़ा। उसने पड़ौसियों को इकट्ठा किया। पड़ौस की स्त्रियाँ भीतर दौड़ आयीं। हलवाइन ने आग पर्चा ली थी। चिता चुनी जा चुकी थी। उस पर एक लाल कपड़ा बिछाया जा चुका था।

पड़ोसिनों ने हलवाइन को पकड़ लिया, परन्तु वह अपने हठ पर दृढ़ थी।

( ३ )

पड़ौसियों ने तय किया कि शेरशाह को अर्ज़ी दे दो। बादशाह की आज्ञा जारी होने की घड़ी तक के लिये शायद हलवाइन मान जाय। बला टली सो टली—संभव है थोड़े समय में उसका हठ टल जाय। हलवाई अर्ज़ी लेकर शेरशाह के दरवाज़े पर पहुँचा।

शेरशाह का आरम्भिक जीवन तत्कालीन राजनीति के अखाड़े का जीवन था—कुटिल, कपटी और कुछ क्रूर भी। प्रत्येक युग में राजनीति

के ये लक्षण अङ्ग रहे हैं। परन्तु शेरशाह न्यायी भी था, जब बादशाह हो गया। और वजीर उसके न्याय को जानता था।

हलवाई की अर्जी अन्य अर्जियों के साथ वजीर के हाथ में पहुँच गई। वजीर अर्जियां पढ़ पढ़ कर बादशाह के सामने रखता जाता था। वह उन पर अपना आदेश चढ़ाता जाता था। वजीर ने हलवाई की अर्ज़ी हाथ में उठाई। पढ़ी। हाथ कांपने लगा। उस अर्ज़ी को फिर किसी घड़ी सुनाने के लिये अलग रखकर दूसरी उठाना चाहता था कि शेरशाह ने टोका।

'क्या है वह कागज़ ? उसमें क्या है ?'

वजीर का मुँह पोला पड़ गया था, गले को साफ़ कर रहा था परन्तु गला साफ़ नहीं कर पा रहा था।

शेरशाह की उत्सुकता और भी बढ़ी।

'क्या है जी उसमें ? पढ़ो न। क्यों अलग रख दिया ?

'जहांपनाह।'

घबरा क्यों रहे हो ? क्या आपके खिलाफ कोई शिकायत है ?'

'नहीं, जहांपनाह।'

'फिर उसमें ऐसा क्या है जिससे तुम्हारी घिग्घी बँध गई ?'

वज़ीर चुप।

बादशाह कड़का, 'बोलते क्यों नहीं हो ? मुझे दो वह काग़ज़ अगर आपका होश खराब होगया है तो !'

'जहांपनाह, दरख्वास्त शाहज़ादे साहब के खिलाफ है।'

'अच्छा ! इसीलिये तुम ऐसे मरे जारहे हो। इधर पेश करो।'

वज़ीर ने हलवाई की अर्ज़ी को बादशाह के सामने रख दिया और मुर्झाई निगाहों उसकी ओर देखने लगा।

हलवाई भी देख रहा था और कांप रहा था। शेरशाह ने अर्ज़ी पढ़ी। भौंहें सिकोड़ी और होठ सटाये। एक क्षण बाद बोला, 'शाहज़ादे को हाज़िर करो।'

शाहज़ादा हाज़िर कर दिया गया। न मुँह में पान थे और न होठों पर बीड़ी के स्वर्णपत्रों की वे चिन्दियां।

बादशाह ने शाहज़ादे के हाथ में हलवाई की अर्जी दी। पढ़ने का हुक्म दिया। जब वह पढ़ चुका, तब उससे पूछा, 'क्या अर्ज़ी में लिखी हुई शिकायत सच है?'

शाहज़ादे की रेखायें बनी बिगड़ीं। गले तक कई झूठ आये, परन्तु होठों से बाहर नहीं निकल सके। माथे से पसीना टपकने लगा। वह चुप था।

शेरशाह ने गरज सी लगाई, 'बोलो, चुप क्यों हो? क्या हलवाई की अर्जी में दर्ज शिकायत सच है?'

'जी जहाँपनाह?'

'सवाल मत करो, जवाब दो। बात सच है या नहीं?'

'क्या अर्ज़ करूं जहाँपनाह, जब वह कहती है तो सच ही होगी।' फिर बहुत दबी जबान से बोला, 'कुछ पान इसकी घर वाली पर जा पड़े तो क्या हो गया? अगर उसको इतना अखरा है तो कुछ जुर्माना दे दूँगा।'

शेरशाह तड़तड़ाया,—'इसकी घर वाली पर जा पड़े! क्या हो गया!! जुर्माना दे दूँगा!!! कमबख्त!!!!'

क्रोध के मारे शेरशाह की देह हिल रही थी। भरे हुये दरबार में सन्नाटा छा गया।

कुछ क्षण उपरान्त शेरशाह ने आदेश दिया, 'शाहज़ादे की बेगम हलवाई के घर के आंगन में नहाने के लिये वैसी ही उघाड़ी बैठेगी,

शाहजादे के उसी हाथी पर हलवाई पान का डिब्बा लेकर बैठेगा और बेगम के ऊपर बीड़ियाँ फेंकेगा। उसके बाद उसी हाथी के पैरों तले शाहज़ादा कुचलवा दिया जायगा।'

शेरशाह ने सूक्ष्मता के साथ दरबार में उपस्थित भीड़ पर अपनी आंख घुमाई—इस आदेश का किस पर कैसा प्रभाव पड़ा है। शाह-जादा धम्म से गिर पड़ा। गिरने से बचने के लिये वजीर ने एक खम्भे का सहारा पकड़ा। हलवाई हर्ष और घबराहट के बीच में झूलने लगा। उसके पड़ोसी चाहते थे तुरन्त घर भाग जाये। कई दरबारियों के मुँह से हाय हाय निकल पड़ी।

एक क्षण बाद शेरशाह बोला, 'ले जाओ शाहज़ादे को कैदखाने में।'

अब दरबारियों ने अरज मिन्नत के ढेर लगाने आरम्भ कर दिये। कोई कोई हलवाई की खुशामद पर पिल पड़े। हलवाई के पड़ौसियों ने भी उससे हाथ जोड़े।

हलवाई ने आगे बढ़कर शेरशाह से प्रार्थना की। 'जहाँपनाह, मैं न्याय पा गया। अर्ज़ी वापिस लेता हूं।'

तुम कौन होते हो जी अर्ज़ी वापिस लेने वाले ! अत्याचार आपके साथ हुआ है या आपकी बीबी के साथ ?

हलवाई ने बहुत थराई बिन्ती की, परन्तु शेरशाह नहीं माना।

## ( ४ )

भीड़ हलवाइन के पास पहुँची। जब उसने शेरशाह की आज्ञा का समाचार सुना, पागलपन न जाने कहां चला गया।

बोली, 'मैंने सब पा लिया। न्याय हो गया। पर मैं इस दण्ड को पसन्द नहीं करती।'

पति ने कहा, चिता पर तो न चढ़ोगी अब ?'

उत्तर मिला, 'नहीं चढ़ूंगी।'

उसके कान के पास से हलवाई खुसफुसाया, 'मेरे काम की तो हो न! वह बात फिर तो न कहोगी कभी देवी?'

'बको मत।' हलवाइन भी खुसफुसाई।

हलवाई का उत्तर शेरशाह के पास भेज दिया गया। परन्तु वह नहीं माना।

उसने कहा, 'जब तक हलवाइन की अर्ज़ी नहीं आयेगी तब तक सजा में कोई भी रियायत नहीं की जायगी।'

हलवाइन की अर्ज़ी लेकर हलवाई शेरशाह के सामने पहुँचा। भीड़ भी पहुँची।

शेरशाह ने भीड़ के हर्ष मग्न चेहरों को बारीकी के साथ झांका।

शाहज़ादे को कैदखाने से बुलवाया गया। शेरशाह ने अपराधी को मुक्त करने का आदेश दिया, 'चूंकि हलवाइन ने तुमको माफ़ कर दिया है, इसलिये छोड़ता हूँ। कभी फिर कोई ऐसी हरकत की तो न बच सकोगे।'

शाहज़ादे के होठों पर कृतज्ञता की मुस्कानें खेल गईं।

शेरशाह ने चिल्लाकर कहा, 'लेकिन कुछ सजा तो तुमको दी ही जावेगी।'

शेरशाह ने अपने लड़के को जुर्माना किया जो हलवाई को दिल-वाया गया। शाहज़ादा नतमस्तक था।

अन्त में शेरशाह ने कहा, 'हिन्दुस्तान में वही राज क़ायम रह सकता है जो लोगों के साथ न्याय करने में कसर न लगावे।'

# सौन्दर्य-प्रतियोगिता

महेश नगर में सौन्दर्य की प्रतियोगिता होनी थी। शरद ऋतु समाप्त होने को, दोपहरी में बोलने वाली पड़कुलिया की पुकार मन्द हो चली, बुलबुल और गौरैया की चहक तीव्र। चमेली की महक बढ़ गई थी। नदियों और नालों का पानी नीला, शिशिर आने को, प्रतियोगिता के लिये तारीख और समय नियुक्त हो चुका था।

उस समय की मानो आगवानी के लिये महेशनगर की कई सड़कें फल-पत्तों और बंदनवारों से सजाई गईं। रंगबिरंगी झाड़ियों की क़तारें। केवल वे सड़कें स्वच्छ। गर्द गुबार को दबाने के लिये पानी का छिड़काव। प्रबन्ध के लिये पुलिस को स्पष्ट और अस्पष्ट आदेश दे दिये गये। वह समय आया।

महेशनगर के एक दूसरे भाग की गलियों में नालियां, नाबदान, मच्छर और चिरसंचित कूड़ा कचड़ा। एक गली में कुछ भिखमंगे किसी पूर्व निश्चित योजना के अनुसार इकट्ठे हुये। उस भाग के नर-नारी और बालक भी घरों से बाहर; बिना किसी पूर्व निश्चित योजना के। परन्तु एक निरन्तर क्रम के साथ। वे सब सौन्दर्य-प्रतियोगिता को देखने के लिये वस्त्रों से वस्त्रों को छहराते-छुलाते कंधों से कन्धों को रगड़ते दौड़ते-से चले जा रहे थे। भिखारी उन लोगों से कुछ नहीं मांग रहे थे। उनको देखते जाते थे और कुछ सलाह सी कर रहे थे।

एक दो को छोड़कर और सब जीर्ण शीर्ण। कपड़े तो उनके तन पर नहीं के बराबर थे। चीथड़ों की असंख्य फटनों में होकर जमी हुई धूल के ऊपर सूखे हुये पसीने और पानी की लहरें झाँक रही थीं, जैसे उनका स्नान से कभी पाला न पड़ा हो। उनमें एक दो तगड़े शरीर के भी थे, परन्तु कपड़े उनके भी वैसे ही थे। स्नान के साथ सम्पर्क भी उतना ही।

एक दुर्बल देह ने तगड़े शरीर वाले से अनुरोध किया, 'लट्टू भाई अब तो चल पड़ना चाहिये।

दूसरे दुर्बल देह ने समर्थन किया, 'लोग इकट्ठे होने लगे हैं। रूप की जाँच कराने वाली अब आती ही होंगी।

लट्टू बोला, 'हाँ तो जो कुछ मैंने कहा है उसको याद रखना, नहीं तो पुलिस वाले मार भगायेंगे। हम लोगों की हड्डी फूटेगी और एक पैसे के भी दर्शन न होंगे।'

'भूलेंगे नहीं। कुछ इधर, कुछ उधर, भीड़ में समा जायेंगे, पर कुछ तो इकट्ठे रहेंगे ही।'

'हम लोगों के पास अगर एक एक कपड़ा ही भले मानसों का सा होता तो कोई हिश-फिश न करता; इसी का डर है।'

'इकट्ठे रहेंगे तो पुलिस वाले एक जगह खड़ा ही न होने देंगे; हम लोगों के सिर पर डण्डे बजा डालेंगे।'

'एक क्या, आधा कपड़ा भी अच्छा होता तो कोई भीख क्यों देने चला था?'

'अरे भाई छिटपुट रहेंगे तो तमाशा भी देखने को मिल जायगा और कुछ पैसे भी हाथ लग जायेंगे

'और यदि किसी ने टोका? वहां न जाने दिया तो?'

'भीड़ को कोई रोक सकता है? उसी भीड़ में तो खिलाना है।'

'ठीक तो है, ये जो इतने जा रहे हैं, इनको कौन रोके-टोकेगा !

'इनके कपड़े जो अच्छे हैं।'

लट्टू गुर्रा कर बोला, 'दिन भर यही सब टांय-टांय दुहराटे तिहराते रहो। फिर इसी गली में भूखे पेट आकर सो जाना।

इस गुरगुराहट ने उन सब को चुप कर दिया और वे सौन्दर्य प्रतियोगिता के स्थल की ओर बढ़े। जब उस स्थल के निकट पहुँचे उन लोगों ने विविध रंगों की भिन्न भिन्न धाराओं में प्रवाहित भीड़ के डूबते उतराते खंडों को देखा। थोड़ा सा सहमे। परन्तु अपने अगुआ लट्टू को प्रधान प्रवेश द्वार के समीप द्रुतगति से पहुँचा हुआ देखकर वे भी, पूर्व निश्चित योजना के अनुसार, एक-एक दो-दो करके, भीड़ की अनेक टुकड़ियों में विलीन हो गये।

( २ )

मोटरें आने लगीं और दर्शकों के तांगे साइकिलें भी। एक नई बड़ी मोटर प्रवेश द्वार के पास से ज़रा हट कर पांत में खड़ी हो गई। श्रीमती चपला अपने पति लाखन के साथ उतरीं। मोटरों की पांत के पीछे भी कुछ लोग खड़े थे। एक इनमें से ज़रा आगे बढ़कर श्रीमती चपला के कुछ निकट आया। चपला ने मनीबेग संभाला। ( छोटी थैली ग़लत अनुवाद होगा, क्यों कि सुहावना मनीबेग मनीबेग ही है )

आगे बढ़े हुये ने हाथ जोड़े, विघिया कर कहा, 'सरकार की फत्ते हो, भगवान की बाल रक्खें; भूखा हूं कुछ मिल जाय।'

भिखमंगे के फटे सड़े गले कपड़ों को देखते ही चपला ने उसकी बृत्ति को समझ लिया और मनीबेग को हाथ में ज़रा कस लिया। उस को अपनी ओर बढ़ा हुआ देखकर नाक भौं सिकोड़ी, इतनी कि सौन्दर्य प्रतियोगिता में चपला एक क्षण भी न ठहर पाती।

'पुलिस कहां चली गई है ? इन कमबख्तों को रोकने वाला यहां कोई भी नहीं ! पति से कहा। लाखन ने सान्त्वना दी, 'चलो भी समय हो रहा है।'

'कितना मोटा तगड़ा है ! काम नहीं करेगा, भीख मांगेगा।' भिखमंगे की जबान बन्द नहीं हुई।

'सरकार की फत्ते हो······', वह दुहराता-तिहराता रहा।

चपला और लाखन प्रतियोगिता-भूमि की ओर चलने लगे। भिखारी थोड़ा-सा और बढ़ा।

फिर 'सरकार की फत्ते हो ·····', परन्तु वह मोटरों की पांत को लांघकर और आगे नहीं बढ़ा।

चपला ने मुड़कर एक करारी दृष्टि भिखारी पर डाली। भिखारी तो ठमटमा ही गया था, परन्तु उसके चेहरे पर सहम न थी, घिघियाना भी ग़ायब हो गया था। वह लट्टू था।

प्रतियोगिता काफ़ी देर चलती रही। एक बड़े पदाधिकारी की पत्नी निर्णायिका थी। चपला के चेहरे के बनाव, रङ्ग-रूप और होठों की मुस्कान ने उसको प्रथम कर दिया। फिर और महिलायें निर्णायिका के सामने आईं। किसी की मुस्कान में किसी कोण की ग़लती थी, किसी की आँख में सलज्जता की कुछ कसर बाक़ी थी, तो किसी के केश पीठ पर उतने झटके नहीं खा रहे थे। इनको नम्बर चपला की अपेक्षा कम मिले। निर्णायिका के निकट बैठने वाले दर्शकों में स्त्रियाँ ही थीं। पुरुष दर्शक दूर बैठे थे। बच्चे भी इन लोगों के साथ तमाशा देखने आये थे। उनकी प्रतियोगिता चिल्लाने, रोने-चीखने या इधर से उधर और उधर से इधर दौड़ने में हो रही थी।

प्रतियोगिता का कार्यक्रम समाप्त होने के बाद चाय पानी चला, फिर प्रतियोगिता वालियां और दर्शक बिखरने लगे। प्रतियोगिता स्थली से बाहर निकलते ही व्यवस्था चलदी और जिसका मुँह जहाँ

उठा उसी दिशा में चलने लगा। अब भीड़ में जगह जगह भिखमङ्गों ने तरह तरह की पुकारों के साथ भीख के लिये हाथ पसारे। किसी किसी ने उनको कुछ दिया भी। प्रोत्साहन पाकर वे दूसरों से जा चिपटने लगे। चपला गर्दन की मोचों-लोचों से उन विघ्न-बाधाओं को पार करती हुई लाखन के साथ अपनी मोटर पर आगई। उसको भय था कि कहीं वह मोटा तगड़ा भिखारी जान खाने को फिर न आ घेरे। वह वहां नहीं था। परन्तु कुछ दूरी से दूसरा आ झपटा। कपड़े इसके भी फटे और सड़े-गले थे, परन्तु वह तगड़ी देह का न था। मला-कुचैला, दुबला। चपला और लाखन ने तुरन्त मोटर में घुसकर अपने आसन का आसरा पकड़ा और ड्राइवर ने भोंपू बजाकर मोटर चला दी। भिखारी कुछ बड़बड़ाता हुआ रह गया।

मोटर तेज़ी से चली। भीड़भाड़ काफ़ी थी। ड्राइवर को जल्दी घर पहुँचना था और उन पति-पत्नी को धीरे चलने में कोई रस न था। भीड़ के लोग एक ही दिशा में नहीं जा रहे थे, रास्ते को दायें-बायें काटते भी थे। ड्राइवर को प्रायः मोटर की गति को धीमा कर देना पड़ता था और उस समय उसका चेहरा कठोर पड़ जाता था। चपला के चेहरे पर भी कुछ सिकुड़नें बन बन जाती थीं। यकायक एक चलने वाला बायें से दायें निकला, ड्राइवर मोटर को न रोक सका; चलने वाले को उसे बचाना था; मोटर को बिजली के खम्बे की ओर मोड़ दिया। मोटर ज़ोर के साथ बिजली के खम्बे से जा टकराई। लौट गई। ड्राइवर एक तरफ़ जा गिरा, लाखन दूसरी ओर। चपला मोटर के नीचे आगई। उसका सिर बाहर निकला हुआ था, धड़ का निचला भाग मोटर की पटरी के नीचे, परन्तु मोटर बिलकुल नहीं लौट पड़ी थी, इकङ्ग थी, चपला के पैरों को बिना घाव के निकलने की गुञ्जायश थी।

( ३ )

सड़क पर चलने वाले विचलित हो गये। कुछ इधर-उधर हटे, कुछ मोटर वालों की सहायता के लिये दौड़ पड़े। अधिकांश ने मोटर को यथावत करने के लिये पूरा बल लगाया। एक ने चपला के कन्धे पकड़कर मोटर की पटरी के नीचे से निकालने की कोशिश की।

चपला को धक्का लगा था, परन्तु वह अचेत नहीं हुई थी। जो व्यक्ति उसके कन्धे पकड़कर निकालने का प्रयास कर रहा था उसकी ओर चपला ने देखा। फटे-सड़े-गले कपड़े, दाढ़ी मानो वह कभी बनाता ही न था, परन्तु शरीर उसका तगड़ा था। चपला को विश्वास होगया कि इतने तगड़े शरीर वाले का प्रयत्न व्यर्थ नहीं जायगा। चपला की कोई त्योरी नहीं चढ़ी; उसको थोड़ी सी चोट आगई थी, चेहरे पर उसकी पीड़ा ही व्यक्त हो रही थी। वह आशा के साथ उसकी ओर देख रही थी। यह वही था जो सौन्दर्य प्रतियोगिता में जाने के पहले उसको मोटर से उतरते ही मिला था।

चपला को उसने मोटर के नीचे से निकाल लिया। मोटर को उन बहुतसे व्यक्तियों ने खड़ा कर दिया। मोटर के लैम्प टूट-फूट गये थे। इञ्जन का ढक्कन कुचल-पिचल गया था, परन्तु बैठने वालों को कुछ साधारण सी चोटें ही लगी थीं।

चपला मोटर के नीचे से निकाली जाने पर एक क्षण के लिये सड़क पर बैठी, फिर हाथ का टेका लगाकर खड़ी हो गई। उसके निकट ही वह तगड़ा भिखारी भी खड़ा था।

'तुमने मेरी सहायता की, मैं इसका बदला अभी चुकाती हूं', चपला ने एक छोटी सी कराह के साथ कहा। मनीबेग ( अब उसको 'बटुआ' कह सकते हैं ) हाथ में नहीं था। पथराई हुई आँखों को चपला ने ज़मीन पर घुमाया। वहां बटुआ न था।

'मुझको कोई बदला नहीं चाहिये', उस भिखारी ने कहा। भिखारी वहां से हटने को हुआ।

'तुमने मेरा बटुआ देखा है—बटुआ ?'

भिखारी तुरन्त मुड़ा। वहीं जमकर खड़ा होगया।

बोला, 'नहीं तो !'

'फिर कहां गया ?'

'मैं क्या जानूँ।'

भिखारी के चेहरे पर घिघियाहट का कोई चिन्ह न था।

इतने में हांफता हुआ लाखन अपनी पत्नी के पास आगया।

'बच गईं ? लगी तो नहीं ?' लाखन के मुँह से निकला।

'बच गई।' चपला ने आश्वासन दिया।

'मेरा मनीबेग ! हाय मेरा मनीबेग !!' चपला ने तुरन्त ही चीखा।

भिखारी अपने ठौर पर ही खड़ा था। लाखन और चपला की आंखों का सन्देह उसी पर केन्द्रित था।

इतने में एक व्यक्ति मनीबेग लिये हुये उन लोगों के पास आया। चपला ने उसको पाकर चैन की सांस ली।

भिखारी ने कहा, 'मिल गया न ?' और वहां से हटने के लिये मुड़ा।

चपला ने मनीबेग को खोला और उसमें हाथ डाला। भिखारी से बोली, 'ठहरो, कुछ इनाम लिये जाओ।'

भिखारी धीरे धीरे हट रहा था। वह नहीं रुका।

'मुझको नहीं चाहिये इनाम', कहता हुआ भिखारी आने-जाने वालों में विलीन हो गया।

ड्राइवर ने आकर बतलाया, 'मैं इसको जानता हूँ। नामी भिखारी है यहां का, लट्टू नाम है। भीख ही भीख से इसने सैकड़ों रुपये कमा-कर रख लिये हैं।'

# वंश-परम्परा

( १ )

आसफ़जाह निज़ामुलमुल्क औरंगज़ेब बादशाह का सैनिक, सेनानायक और सचिव भी रहा था। औरंगज़ेब के देहान्त के लगभग तीस वर्ष पीछे तक आसफ़जाह जीवित रहा। मुग़लशाही की सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग उसके हाथ लगा था। औरंगज़ेब के उपरान्त दिल्ली के प्रधानमंत्रित्व को अधिक उपजाऊ न पाकर वह दक्षिण की सूबेदारी के लिये चला गया। उस सम्पत्ति का थोड़ा-सा अंश—लगभग एक करोड़ रुपये से अधिक! वह दिल्ली में छोड़ गया और बाक़ी सबका सब हथियाकर दक्षिण में जा बसा। मराठे परेशान करते थे सो उनको औरंगज़ेब के उत्तराधिकारियों—मुहम्मदशाह इत्यादि—के ऊपर ठेल दिया, जिनका नमक अभी पेट में गल भी न पाया था। आसफ़जाह निज़ामुलमुल्क के मरने पर उसके लड़कों ग़ाज़ीउद्दीन और सलाबतजंग में मुग़लशाही की उस अपार सम्पत्ति के लिये झगड़ा हो गया जो दिल्ली से खिसकायी जाकर दक्षिण में भेजी गई थी। उस झगड़े को सहज ही समाप्त कर देने के लिये सलावतजंग ने अपने बड़े भाई ग़ाज़ीउद्दीन को, बिचारा विकट नमाज़ी और कठोर कन्जूस था—ज़हर दिलवा दिया और मार्ग को हैदराबाद की निजामत के लिये स्वच्छ (!) कर लिया। ग़ाज़ीउद्दीन के एक लड़का था—शिहाबुद्दीन। वह दिल्ली में था। आयु पन्द्रह सोलह वर्ष की थी। उसको ग़ाज़ीउद्दीन ने कई मुल्लाओं

की निगरानी में बड़ी बड़ाई के साथ तालीम दी थी। इनमें से एक अकीबत खां बहुत चतुर और चालाक था। शिहाबुद्दीन पर उसका काफ़ी प्रभाव था।

इस समय दिल्ली का बादशाह अहमदशाह नाम का एक शक्ति शून्य व्यक्ति था। वज़ीर सफ़दरजंग था—जो कुछ वर्ष पीछे अवध का नवाब हुआ।

कट्टर पन्थी और कन्जूस पिता के निधन पर शिहाबुद्दीन को संसार में स्वतन्त्रता के साथ उच्छ्वास लेने के लिये त्राण और एक करोड़ से ऊपर नक़द रुपया तो मिल गया, परन्तु उस रुपये को हाथ में बनाये रखने के लिये कोई बड़ा पद भी तो चाहिये। दिल्ली के उस टूटे फूटे साम्राज्य में भी किसी बड़े पद की प्राप्ति ऐसे लोगों के लिये काफ़ी महत्व रखती थी।

( २ )

शिहाबुद्दीन सुन्दर आकृति का था। स्त्रियों के सम्पर्क, नृत्यगान इत्यादि के संसर्ग से वह कठोर सावधानी के साथ दूर रखा गया था। इसलिये दर्पण में अपनी शकल को देख देखकर तृप्त हुआ करता था। जिस दिन गाज़ीउद्दीन के मारे जाने का समाचार दक्षिण से आया, वह रोया—बाप के मरने के शोक में नहीं वरन इस कल्पना पर कि यदि वह पिता के सामने मर जाता तो संसार का कितना महान सौन्दर्य-सुमन असमय, मुर्झा जाता! और, उसका पिता उसके लिये कितना न रोता पीटता!

रो चुकने के बाद उसने मुँह धोया, बाल सँवारे और आईने में अपनी बड़ी बड़ी आँखों के लाल डोरे देखे। लाल डोरे आँखों को कितना मधुर और आकर्षक बना देते हैं यह उसको रोने के उपरान्त ही जान पड़ा था। वह आईने के सामने अपने मुख की छाया के साथ मूक संभाषण कर रहा था कि उसी समय उसका शिक्षक अकीबत खां

आ गया। उसके आते ही दर्पण एक ओर रख दिया गया, परन्तु उसके चेहरे पर किसी प्रकार की झेंप नहीं आई, केवल नम्रता की हलकी सी लहर दौड़ गई। अक़ीबत ने, शिक्षक के ढङ्ग पर नहीं, प्रत्युत सेवक, निर्देशक और कुशल चाहने वाले के बिलकुल मिले हुये गाढ़े रस के साथ कहा, 'सरकार को दुनिया में अब कुछ और सीखना है? ज़बानें आप बहुत सी जानते हैं; शायरी भी करनी आ गई है; मज़हब की बहुत बातें आती ही हैं, अब हवा को पकड़ने और मोड़ने का फन भी ज़हन में आ ही जाना चाहिये। दक्षिण में कुछ सार नहीं, मराठे और नवाब सलावतजंग आपस में निबटते रहेंगे, दक्षिण है भी यहाँ से बहुत दूर। दिल्ली की किसी बड़ी बागडोर को फौरन मुट्ठी में किये बिना काम नहीं चल सकता, मेरे मालिक!'' 'मेरे मालिक' और 'दिल्ली की किसी बड़ी बागडोर को' हथिया लेने की संभावना ने शिहाबुद्दीन के रोम रोम को जगा दिया।

शिहाब ने अपनी वाणी में मुस्कान का रस घोला, 'उस्ताद, मैं समझा नहीं।'

'काम करने का—फ़ौरन कुछ कर डालने का वक्त आ गया है हुज़ूर!'' अक़ीबत ने अपने बोलों में रहस्य को पिरोया।

'हुज़ूर' सम्बोधन ने शिहाब को और भी फुरफुरी दी। मुस्कराहट और भी विकसित हुई। दर्पण में अभी हाल जिस सौन्दर्य को शिहाब ने निरखा था, मुस्कराते ही उस रूप की स्मृति दुगुनी लहर खा गई।

बोला, 'उस्ताद, मैं तो अब भी कुछ नहीं समझा। जो कुछ जानता हूँ आप ही का दिया हुआ तो है। आप ही बतलाइये क्या करना है; कौनसा काम है,—मेरे लिये तो आप ही सब कुछ हैं!''

अक़ीबत ने अधिक विस्तार न करके अपनी योजना पेश की।

'मीर बख्शी की जगह खाली है, और वह हासिल की जा सकती है। आपका मौरूसी हक़ है—आसफ़जाही हक़।'

'मुझको बतलाइये क्या करूँ, बादशाह के पास जाऊँ ?'

'जी नहीं; वज़ीर सफ़दरजंग के पास जाना होगा।'

'मगर मीरबख़शी के मुक़र्रर किये जाने का फरमान तो बादशाह सलामत ही जारी करेंगे।'

'बादशाह सलामत तो फरमान पर दस्तख़त भर करेंगे। सुझाव तो उनको वज़ीर ही देंगे।'

मगर सफ़दरजंग शिया है, मेरी मदद क्योंकर करेगा ?'

'सफ़दरजंग तूरानियों को खुश रखना चाहता है। हुज़ूर तूरानियों के कुदरती मुखिया हैं।'

'तो मैं अभी उनके पास जाने को तैयार हूं।'

'जी नहीं; ऐसे काम नहीं चलेगा।'

'फिर क्या करूँ ?'

'यहाँ, हिन्दुस्तान में एक बड़े मज़े का रिवाज़ है। उसको धरना कहते हैं।'

'धरना ! कैसा धरना ?'

'जब किसी को किसी से कोई काम कराना होता है और वह काम किसी और तरह से नहीं हो सकता है, तब वह उसके दरवाज़े जा बैठता है। जब तक वह उसको मजबूर नहीं कर लेता, तब तक न तो चैन लेता है और न लेने देता है।'

'बहुत अजीब है। कुछ मनहूस भी है।'

'बिलकुल नहीं। नतीजे को तो सोचिये। बिना किसी झंझट के, और कुछ घण्टों की मिहनत के ज़रिये ही, कामयाबी मुट्ठी में। सरकार, सफ़दरजंग की हवेली पर धरना दें।'

सौन्दर्य शरारत भी कर सकता है, इस कल्पना ने शिहाब के मन को उकसाया, परन्तु अक़ीबत की बात को उसने सहज ही नहीं मान लिया। अक़ीबत ने उसको धरने की पूरी प्रणाली समझाई और अपनी योजना के ब्योरे को उसके दिमाग़ में अच्छी तरह बिठला दिया।

( ३ )

उसी दिन नौ बजे रात के पहले शिहाबुद्दीन वज़ीर सफ़दरजंग की हवेली पर जा अड़ा। पहरेदारों ने समझाया-बुझाया, सफ़दरजंग के कारिन्दों ने आरज़ू-मिन्नत की, परन्तु शिहाब न टला। सफ़दरजंग अपने हरम में दाखिल हो चुका था। उस तक सूचना देने का साहस किसी में नहीं हुआ।

शिहाब ने 'हिन्दुस्तानी धरने' को थोड़ासा और उन्नत किया—अक़ीबत की तालीम व्यर्थ नहीं गई। शिहाब ने अपने बाल बिखेरे, कपड़े फाड़े, खाक डाली और छाती, माथे को भी कूटा। परन्तु हिकमत के साथ। उसने ऐसे हिसाब-किताब से अपने माथे और छाती पर हाथ मारे कि शब्द तो काफ़ी हुआ, परन्तु सूजन नहीं आने दी।

धरने का यह रूप रात भर चला। शिहाब का परिश्रम और अध्यवसाय पहरेदारों और कारिन्दों को सारी रात परेशान किये रहा। उनको चैन मुहाल हो गया और नींद हराम। परन्तु शिहाब इस आविष्कार की सक्रिय कला पर अटल रहा।

ज्यों-त्यों करके सवेरा हुआ। शिहाब ने धरने के उस उन्नत रूप को एक चमत्कार और दिया—उसने रोना और चीखना शुरू किया, इतना कि मार्ग के आने-जाने वाले ठठ के ठठ बाँधकर ठहर ठहर जाते थे। अन्त में शिहाब ने जैसा सोचा था—'कबहुँ तो दीनदयाल के भनक परेगी कान'—सफ़दरजंग ने सुना और वह घबराया हुआ आया। शिहाब की उस दशा को देखकर सफ़दर को चक्कर सा आ गया।

'क्या बात है भाई मेरे ?' सफ़दर ने पूछा।

शिहाब और भी रोया।

सफ़दर ने प्यार के साथ उसके सिरपर हाथ रखकर कहा, 'प्यारे अमीर शिहाबुद्दीन, तुमको क्या हो गया है ? कहो न क्या बात है ? किसने तुमको सताकर अपनी मौत को न्योता दिया है ?'

शिहाब की चीख़ चिल्लाहट और भी बढ़ी। 'आखिर कहो भी न। मैं ज़मीन और आसमान को एक कर डालूंगा। मालूम भी तो हो क्या बात है ?' सफ़दर ने आग्रह के साथ अनुरोध किया।

परन्तु शिहाबुद्दीन काहे को सुनता था ! सफ़दरजंग की सिट्टी भूल गई। समझ में नहीं आता था क्या करे।

उसने सोचा, नहला–धुला दें और कुछ खिला-पिला दें। उठने के लिये मनाया, शिहाब ने न माना। वहीं पानी मँगवाया, परन्तु शिहाब तो अपने ऊपर धूल फेकने में मग्न था, पानी से क्या वास्ता ! सफ़दर ने पानी पीने के लिये आग्रह किया, शिहाब ने बिलकुल इन्कार कर दिया। चिल्लाते चिल्लाते उसका गला बैठ गया था, और रात भर के जागने तथा रोने-चीखने के कारण—चाहे वह कितना भी बनावटी क्यों न रहा हो—उसका चेहरा कुम्हला गया था।

सफ़दरजंग परेशानी के मारे अपना सिर पीट डालने की बात बार बार सोचता था ! वह शिहाब को अपने दरवाज़े से ज़बरदस्ती हटा भी नहीं सकता था, इसलिये उसको अपनी असमर्थता पर बार-बार क्षोभ हो रहा था।

निदान सफ़दरजंग ने बड़ी से बड़ी सौगन्धें खाकर शिहाब से निहोरा किया, 'अब तो बतलाओ मेरे कलेजे, क्या बात है ? मैं तुम्हारे मन की मुराद पूरी करने में आगा पीछा नहीं करूंगा। साफ़ कह देने में किसी भी हिचक को न मानो।'

इस प्रदर्शन ने दो पहर तक का समय ला दिया।

शिहाब ने फटे गले से उत्तर दिया,—यह उत्तर और उसका ठीक अवसर अक़ीबत ने पहले ही समझा दिया था,—'हुज़ूर मेरे बाप हैं, सच्चे बाप। वे जो मर गये हैं, मैं ऐसा ख्याल नहीं करता कि बाप मरे हैं। बाप तो आप हैं। वह जो मरे हैं उनको तो ऐसा समझता हूं मानो मेरे चचा मरे। वायदा करिये कि आप मुझको अपना बेटा समझेंगे और अपने को मेरा बाप।'

सफदरजंग बहुत थक गया था। इस प्रार्थना को सुनकर उसका जी हलका हुआ। उसके एक लड़का शुजाउद्दौला था ही, सोचा दूसरा शिहाबुद्दीन सही, शायद किसी दिन शिया मत को भी अंगीकार करले, तूरानियों के एक बड़े और प्रबल दल का सहयोग मुफ़्त ही में प्राप्त हो जायगा।

सफ़दरजंग ने वचन दिया। शिहाब ने धरने को समाप्त कर दिया।

( ४ )

सफ़दरजंग उसको अपने हरम में ले गया। सफ़दर की बेगम बिना किसी नक़ाब बुर्के के उसके सामने आ गई और उसने शिहाब को माता बनने का आश्वासन दिया। भोजन इत्यादि से फ़ारिग होने के बाद शिहाब और शुजाउद्दौला की पगड़ी बदली गई। शिहाब उसका पगड़ी बदल भाई बन गया।

शिहाबुद्दीन अपने इस पहले पराक्रम पर सन्तुष्ट होकर घर लौट आया, गुरु—अक़ीबत—ने शिष्य के कुशल अध्यवसाय की सराहना की। शिहाब का बालपन कठमुल्लों की दबोच में रहा था। इस दबोच ने कोमल नैतिक भावनाओं का तो दमन कर दिया, परन्तु मनको एकाग्रता दे दी, जिस एकाग्रता से मनुष्य स्वार्थ को लूट खसोट, हत्या, जालफरेब इत्यादि साधनों द्वारा सफल करने से नहीं हिचकता।

बादशाह अहमदशाह से सफ़दरजंग ने उसको मीरबख्शी का पद दिलवाया। उसकी उपाधियां हुईं—इमादुल्मुल्क, ग़ाज़ीउद्दीन, खान-बहादुर, अमीरुल उमरा, निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह। इस समय वह कुल पन्द्रह सोलह साल का था।

( ५ )

दो तीन वर्षों के भीतर ही शिहाब ने सफ़दरजंग के ऊपर हाथ साफ़ कर दिया। वह किसी प्रकार जान बचाकर लखनऊ चला गया। उसके मरने पर फिर उसने अपने पगड़ी बदल भाई शुजाउद्दौला का विनाश करने के लिये षड्‌यन्त्र रचे। वह बाल बाल बचा। फिर उसने दिल्ली के दो बादशाहों—अपने स्वामियों—को न केवल पदच्युत किया, उनको मरवा भी डाला और शाही हरम की बेइज्ज़ती की। उसका उस्ताद अक़ीबत उसके सारे षड्‌यन्त्रों में शामिल रहता था और उसके प्रत्येक प्रकार के विकास में पूरी सहायता समर्पित करता रहता था। यह सब दो तीन वर्षों के भीतर ही हो गया।

शिहाब अपने बाप से भी बढ़कर कन्जूस था। धन संग्रह की प्रत्येक पल पर प्यास। सिपाहियों का वेतन एक एक दो दो वर्ष तक बक़ाया में। शिहाब की धन संग्रह सम्बन्धी क्रियाओं में भी अक़ीबत का पूरा सहयोग रहता था, परन्तु निज़ामुल्मुल्क शिहाब को उस्ताद अक़ीबत खां अब कुछ भारी मालूम पड़ने लगा था। शिहाब को सन्देह था कि वसूली का पूरा रुपया नहीं दाखिल करता है। शिहाब ने उसको सफ़ाई देने के लिये बुलाया। क्रुद्ध क्षुब्ध सिपाही मार्ग में थे। सफ़ाई देने और धन संग्रह की कोई नई योजना सुझाने के लिये वह शिहाब के पास आ रहा था कि बीच में कुछ बदख्शानी सिपाही मिल गये। उन्होंने घेर लिया। एक बोला, 'शरम नहीं आती! खाकर मोटा पड़ गया है जब कि हम लोग भूखों मर रहे हैं। दे हमारी तनखाह आज।'

सिपाही शिहाबुद्दीन के मन की बात को जानते थे।

दूसरे सिपाही ने कहा, 'हमारे नाम से रुपया वसूल किया और लूट कर घर में रख लिया है। देता है या लगाऊँ लातें?'

अक़ीबत हक्का बक्का रह गया। निज़ाम के उस्ताद के साथ एक साधारण सिपाही का यह सलूक!

'मारो दग़ाबाज़ को! वैसे नहीं देगा।'

'करो मरम्मत बेईमान की!'

'इसी ने तो दिल्ली की सल्तनत को परेशान कर रखा है!'

'कुलीगीरी करें हम लोग और नवाबी करे यह!' अक़ीबत ने इधर उधर देखते हुये घिघियाकर कहा, 'भाइयो, आपकी तनखाह के बन्दोबस्त में ही तो नींद और आराम हराम हो गये हैं। निज़ाम के पास रुपया भेज दिया है, तुमको अभी मिलता है।'

'हमको मालूम है कितना निज़ाम के पास भेजा है और कितना खुद खा गये हो।' एक बोला।

दूसरा—'शैतान कहीं का।'

तीसरा—'मारो, तोड़ दो इसके दाँत!'

सिपाही अक़ीबत पर चिपट पड़े और उसकी खूब मारपीट की। उसके कपड़ों की धज्जियां कर दीं।

कुछ बदख्शानी अफ़सरों से और अधिक न देखा गया; बीच बिचाव कर दिया, नहीं तो वहाँ वह घूँसों और लातों से ही मार डाला जाता।

उसी दशा में वह शिहाब के पास गया। अक़ीबत ने बिसूर कर शिकायत की, 'हज़रत, मेरी बहुत बेइज्ज़ती की गई।'

शिहाब के ऊपर उसके बिसूरने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। शिहाब ने कहा :—

'बदख्शानियों की तनखाह क्यों नहीं दी?'

उसने उत्तर दिया, 'रुपया तो हुज़ूर के पास भेज दिया, मैं कहाँ से देता ?'

'क्या मेरे पास सब वसूली भेज दी है आपने ?'

'और नहीं तो क्या ?'

'और नहीं तो क्या ! आप बहुत पाजी हैं !! बहुत रुस्वाई हुई !!! बहुत बेइज्ज़ती !!!!'

'रुस्वाई और बेइज्ज़ती तो मेरी हुई है, सरकार, आपका क्या बिगड़ा है ?'

शिहाब अपने उस्ताद को स्वतन्त्रता के साथ दिल्ली में घूमने देता तो मानो अपमान की पुस्तक प्रचार करती हुई घूमती। शिहाब ने यही सोचा।

बोला, 'आपने नाजायज़ तरीके से बहुत रुपया जमा कर रखा है।'

अक़ीबत को थोड़ी देर के लिये अपने अंगों की पीड़ा भूल गई। खिसियाने हुये स्वर में बोला, 'मेरी खिदमतों का यह फल दिया गया है मुझको ?'

'फल तो अब मिलता है जनाब को', शिहाबुद्दीन ने कड़े स्वर में कहा।

उसने ताली बजाई, ताली बजाते ही कुछ अफ़ग़ान पहरेदार आगये।

शिहाब ने उनको आज्ञा दी, 'फ़ौरन इस बला को पाक करो। बड़ा मक्कार और फ़रेबी है, अब ज़िन्दा रहने का हक़दार नहीं।'

प्राणों की भिक्षा माँगने के पहले ही अफ़ग़ान पहरेदारों के खन्जर म्यान से बाहर कूद पड़े और अक़ीबत की छाती में धस गये, वह उसी स्थान पर तुरन्त मर गया।

निज़ाम ने सोचा, 'अब मुझसे बढ़कर होशियार और चालाक दुनियां में और कोई नहीं है।'

# मूंग की दाल

शिवलाल कवि था, चित्रकार और गायक भी, परन्तु वह यह नहीं जानता था कि इनमें से किस कला में वह सर्वश्रेष्ठ है।

छोटा-सा साफ़-सुथरा घर, थोड़े-से पैसे, सुन्दर सलोने दो नन्हें बच्चे, कुड़कुड़ाने वाली पत्नी और खुद ज़रा झेंपू। दैनिक समाचार-पत्रों के साप्ताहिक संस्करणों और मासिकों में जब उसकी प्रशंसा छपती तो उसको अकेले में पढ़ता, प्रसन्न होता और उमगता। मुँहपर कोई उसकी तारीफ़ करता तो भीतर भीतर एक खरोंच-सी खिंच जाती और मुँहपर लाज की कुछ रेखायें उभड़ पड़तीं।

एक कविता को सचित्र करते-करते जब ऊब उठा तो चित्र को अधूरा छोड़कर सितार हाथ में ले लिया और तन्मय होकर गाने लगा। कान को अच्छा लगा, फुरेरू आई, भीतर ही भीतर वाह वाह उठी। अपनी छोटी-सी मित्र-मण्डली में जब गाता था, तब भी कभी कभी वाह वाह मिल जाती थी, परन्तु वह इतनी मीठी नहीं लगती थी। गाना रोककर वह बजाने लगा। अच्छा रहा—मनमें वाह वाह उठी। उसी समय श्रीमतीजी ने सितार के तारों की झंकार और भीतर की वाह वाह को कुन्द कर दिया।

'आज भी क्या मूंग की ही दाल बनानी पड़ेगी?'

झंकार और वाह वाह बिलकुल विलीन नहीं हुई थीं। तारों पर उँगली और मिजराब फिर रही थीं। गर्दन उभकी और आँखें श्रीमतीजी की तरफ़ हुईं।

श्रीमती का अनुभव नया नहीं था।

कण्ठ को कुछ और तीव्र करके दुहराया, 'यह मूंग की दाल रोज़ रोज़ कब तक बनाती रहूं?'

सितार को गोद में रख लिया। इधर होठों पर मुस्कान, उधर झिड़क की सिकुड़न और आँखों में दूसरों को मूर्ख या निकम्मा समझने का व्यङ्गपूर्ण स्मित।

'अजी, कुछ भी बना लो। तुम जो कुछ भी बनाती हो उसमें गज़ब का रसायन घोल देती हो। और फिर मूंग की दाल में न जाने कितने विटामिन होते हैं!'

'चूल्हे में गये, तुम्हारे विटामिन।'

'चूल्हे में नहीं, पतीली में।'

'हे भगवान, तुमसे कैसे पार पाऊँ?'

'मूंग की दाल बना बनाकर और भरपेट खिला खिलाकर।'

शिवलाल हँस पड़ा। श्रीमती के सिकुड़े हुये होठ बिखर से गये और आँखों ने विशुद्ध भर्त्सना का रूप धारण किया।

'तुम सोचो तो, बच्चे क्या फिर वही मूंग की दाल आज भी खायेंगे? कभी उनको दूध मिलता है और कभी नहीं, तो दाल की तो अदला-बदली होती ही रहनी चाहिये।'

'हां हां, तुम ठीक कहती हो। थोड़ी देर में बाज़ार जाता हूँ। उड़द की ले आऊँ या अरहर की? कहो तो मसूर की ले आऊँ?'

'चाहे जौनसी ले आओ। पर थोड़ी-सी ले आना। नहीं तो कई दिन उसी को भुगतना पड़ेगा।'

'थोड़ी थोड़ी-सी तीनों न ले आऊँ ? कौन बार बार दालमण्डी में भटकता फिरे।'

'तुम तो गाते-बजाते रहो, बाज़ार से तुम्हें क्या वास्ता ? मैं पुरुष होती तो⋯⋯'

'तो सितार बजातीं, कविता करतीं और ⋯⋯'

वह हँस पड़ी।

'इसी तरह तो ठगते रहते हो मुझको। लो अब दया करो मेरे ऊपर और जाओ मण्डी।'

'सितार साथ लेता जाऊँ ? किसी चौराहे पर गा दूँगा तो कुछ पैसे मिल जायँगे।'

'भीड़ जो इकट्ठी होगी वह पैसे देने को होगी या तुम्हारा सितार छीन ले जाने को ?'

फिर हँसी।

'अच्छा तो वैसे ही जाता हूं। पर कुछ पैसे तो दे दो, या वैसे ही चल पड़ूँ देशाटन और दाल अर्जन को ?'

'तुम तो कहते थे कि एक चित्र बिक गया है, कविता-पुस्तक पर कोई इनाम सरकार के खज़ाने से आने वाला है।'

'मैंने यह तो नहीं कहा था कि रुपयों का चेक भी मेरे हाथ में आ गया है। मैं पूछता हूँ कि तुममें क्या मेरे बराबर भी अकल नहीं ? सरकार इनाम देने के लिये बनाई गई है या इनाम लेने के लिये ?'

वह फिर हँस पड़ी।

'तुमसे किसी तरह भी पार नहीं पा सकती। कभी कुछ कहते हो और कभी कुछ।'

'पागलखाने जाने की तैयारी में हूं।'

'बकबक मत करो। आज भी उसी मूंग की दाल को भुगते लेती हूं। अन्य प्रकार से बनाऊंगी।'

'कहा था न कि तुम्हारे हाथ में गज़ब का रसायन है। खाने के समय मुझको मालूम ही नहीं पड़ता कि क्या खा रहा हूँ।'

पत्नी ने होठों पर फैली हुई हँसी को अंचल के छोर से छिपा लिया।

'तो क्या तुम्हारे पास चार-छः आने पैसे भी नहीं ?'

'अजी, चार-छः आने होते तो सितार के लिये तार की एक गुत्थी न ले आता।'

हँसी फूट पड़ी। वह रसोईघर की ओर जाने को हुई।

'चूल्हे पर अदहन रखा है।'

'इधर भी कुछ तो है ही।'

'किस से पाला पड़ा है, भगवान !'

'सितार से, कलम से और कूची से !'

❀ ❀ ❀

सिर मुड़ाते ही ओले पड़े—शिवलाल ने सोचा। जैसे ही घर से बाहर हुआ, झकपक कपड़े पहिने, कुछ काग़ज़ हाथ में दबाये एक छोटा-सा दल मिला।

'महाकवि ! महाकलाकार !!'

शिवलाल को यह सम्बोधन अच्छा लगा, परन्तु आकृति से हर्ष प्रकट नहीं कर सका।

सोचा, किसी चित्र या किसी कविता की चर्चा करेंगे। दाल कुछ देर में भी आ सकती है। सड़क पर ही चर्चा हो उठे तो थोड़ी-सी झनक सड़क पर चलने-फिरने वालों के भी कान में पड़ जावेगी।

लौटना पड़ा तो घड़ी-आध-घड़ी के विलम्ब से कौनसी विपत्ति रसोईघर पर आ जावेगी ?

दल में से एक बोला, 'हमारे भाग्य, खूब दर्शन हुये। ज़रा बैठक में न चले चलिये, कुछ काम है। बड़े महत्व का काम।'

शिवलाल ने समझ लिया कि कविता, चित्र या गायन-वादन इनमें किसी से भी उस काम का सम्बन्ध नहीं है। मनमें कुढ़न हुई, पर चेहरे पर हर्ष की रेखाओं को छिटकाने का प्रयत्न किया।

बैठक में पहुँचने पर एक ने कुछ काग़ज़ शिवलाल के सामने रख दिये और कहा, 'असेम्बली का चुनाव सिर पर आरहा है…'

'असेम्बली ! यानी विधान परिषद', हिन्दी शब्द को प्रस्तुत करने का आग्रह शिवलाल ने प्रकट किया।

'हां हां, वही। कई मनहूस दल बादल की घोर घटा संघटित करने पर तुल गये हैं। हम लोगों को आपकी सहायता की अनिवार्य आवश्यकता है।' उस दल के राजनीतिज्ञ ने अपने राजनीतिक क्षोभ को साहित्य का झीना आवरण पहनाकर पेश किया।

राजनीति को कलम, कूची और तार की आवश्यकता प्रतीत हो ही गई। जिन लोगों ने मेरे चित्रों और छन्दों को पढ़ा है और उनकी समालोचनायें पढ़ी हैं, वे अवश्य ही असंख्य हैं। उनके वोटों की इनको ज़रूरत है। जहां मैंने समर्थन किया, इनके दल की जीत को कोई रोक नहीं सकता—शिवलाल ने सोचा।

'मेरी सहायता ! पर मैं तो कभी जेल नहीं गया।'

'अजी, जेल जाना हमारा काम था, आप जैसे कलाकारों का नहीं। भ्रम में मत पड़िये।'

तो क्या कलाकार भी विधान परिषद का सदस्य हो सकता है ! जेल नहीं गया तो भी ! छोटी-सी कोठरी की सड़ी गर्मी में बरसों जिसने

कला की लगन के साथ सेवा की, वह जेल की कालकोठरी के किस अनुभव से कम थी? जेल का दण्ड भुगतने से विधान परिषद की सदस्यता मिलती है, सदस्यता से मन्त्रिमण्डल में कोई पद और फिर किसी दिन मुख्य मन्त्री। कोठरी से पीछा छूटेगा। मोटर, रेल, पवन-यान की यात्रा, देश-विदेश का पर्यटन! ये लोग गद्य में लम्बे-चौड़े व्याख्यान देते हैं जिनसे अब जनता इतनी अकुला उठी है कि कानों में उंगली डाल लेती है; मैं सुनाऊंगा छोटी छोटी-सी, चुभीली, रसीली, अर्थपूर्ण कवितायें गा गाकर, जिनको जनता रट लेगी और सिनेमा के गीतों की तरह सड़कों पर गाती फिरेगी।

नम्रता के साथ बोला, मेरी सहायता किस रूपमें चाहिये आपको। प्रश्न के साथ ही एक कामना मन में उठी और वहीं दब गई।

एक ने कहा, 'हमारी पार्टी कुछ बाहरी लोगों को भी सदस्यता के लिये खड़ी कर रही है। उन्हीं के अनुमोदन के लिये इस घोषणा पत्र पर लिख दीजिये। आपकी कीर्ति हमारी सफलता का साधन बनेगी।'

बाहरी! दस बरस पहले एक गांव वाला दूसरे गांव वाले को परदेसी कहता था। अब जो इनकी या उनकी पार्टी में नहीं है, वह बाहरी है!! परदेसी का रूपान्तर ही न?

शिवलाल की दबी हुई कामना ने ज़ोर मारा। कामना महत्वकांक्षा बनी। पत्र पत्रिकाओं में उनकी कृतियों की समालोचना लोग पढ़ते हैं। व्याख्यानों की नई परम्परा चला कर, नई योजनाओं का सृजन करके और पुरानी योजनाओं पर मुलम्मा चढ़ाकर क्यों न देश की उन्नति का काम हाथ में लूँ? संस्कृति का, सभ्यता का, समाज सेवा का, कला इत्यादि इत्यादि का।

स्टेशनों पर, सभा भवनों में, सड़कों पर स्वागत होगा, जुलूस निकलेंगे—कलाओं के सृजन में अर्थकृच्छता बाधक न होगी। रोज-रोज मूँग की दाल! कहीं तो, कभी तो उसका अन्त हो।

'मैं अनुमोदन करूँ या स्वयं खड़ा हो जाऊँ विधान परिषद की सदस्यता के लिये ?' पूरे साहस के साथ शिवलाल ने पूछा या अनुरोध किया, परन्तु स्वर में थोड़ा सा झेंपूपन था।

दलवालों ने वाह ! वाह !! हां, हां।' कहा और एक दूसरे का मुँह देखने लगे। आये थे दक्षिणा लेने, नौबत आगई जेब काटने की।

कहीं यह दूसरी पार्टी का समर्थन न कर उठे, या, दूसरी पार्टी अपने में इसको समा ले तो सौदा महंगा पड़ जायगा।

चतुर खिलाड़ी थे, सोचा किसी कम महत्व वाले को खिसका कर शिवलाल को समेट ही लेना चाहिये।

दलवालों ने हामीं भर दी। घोषणा पर शिवलाल ने हस्ताक्षर कर दिये। वे अपनी टोह में एक तरफ़ चले गये, शिवलाल दालमण्डी की तरफ़। सोचता था, विधान परिषद का सदस्य हुआ और अब हुआ। कोई रोक ही नहीं सकता सफलता की अप्रतिहत गति को। सदस्य फिर मन्त्री, फिर—शिवलाल को दालमण्डी ऐसी जान पड़ी जैसे कोई नाटकशाला हो, जैसे रंग बिरंगे पर्दों पर सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बने हों और रंग मंच पर अभिनयकर्ता किसी सुखान्त कहानी का निर्वाह कर रहे हों।

दाल मोल ली और कुछ पैसे ठगाकर घर आ गया। श्रीमती कुड़कुड़ाईं, परन्तु सदस्यता के नकशों में वह कुड़कुड़ाहट घुल गई।

शिवलाल सदस्य हो गया और मन्त्री पद प्राप्ति की आशा भी सफल होती दिखी। परन्तु इसके पूर्व एक बात बड़ी मोहक और आकर्षक हो गई। शिवलाल की पार्टी ने अपने विरोधियों को, जो हार गये थे, झुलसाने, तड़पाने और राजनीति की भाषा में कुचल कर सदा के लिये मिटा देने के उद्देश्य से अपने विजय प्राप्त सदस्यों का जुलूस निकालने की ठानी। लम्बा जुलूस, बाजोंगाजों, मोटरों और घुड़सवारों हाथियों का जुलूस।

जो हमसे लड़े थे घर के बिलों में दुबककर बैठ जायेंगे। जुलूस निकला और बड़ी शान के साथ।

शिवलाल अकेले नहीं बल्कि जितने मताभिलाषी सफल हुये थे सबने सोचा यह जुलूस हमारे सम्मान के लिये निकला है।

पार्टी वाले ज्यादा सच्ची बात जानते थे, हम जीते हैं, हमारी जीत की दुंदुभी पीटने के लिये ही यह जुलूस निकला है; उम्मेदवार ज़रूर कुछ न कुछ हैं, परन्तु कुछ न कुछ ही हमने प्रयत्न किया होता तो चित थे।

फिर एक दिन आया जब शिवलाल अपने प्रान्त या उन्नति प्राप्त संज्ञा 'राज्य' का एक मन्त्री भी हो गया।

चढ़ने को विविध प्रकार की सवारियां; स्वागत के लिये हलके मोटे छोटे बड़े जुलूस; बनाने के लिये योजनायें; व्याख्यान देने के लिये ऊँचे मंच और धैर्यवान श्रोता;—परन्तु व्याख्यान गद्य में, क्योंकि कविता नाहीं कर उठी थी और उसके फोटो छापने के लिये अनेक दैनिक, साप्ताहिक और मासिक उसके मुंह से निकली ज़रा ज़रा-सी बात प्रकाशित करने के लिये पसीने में लथपथ संवाददाताओं का समूह और बंगले में आराम के कतिपय साधन।

एक दिन उसने सोचा, अपने अनुभवों पर कुछ कवितायें लिखूँ, उस दिन के दैनिक में अपना एक चित्र देखकर सहसा उसके मुँह से निकला, 'हे भगवान! क्या यह मेरा चित्र है? कितना विकृत, कुरूप भोंडा! मैं क्या ऐसा हूँ?'

आईने के सामने गया। वैसा तो नहीं हूँ। इन समाचार पत्र वालों ने मेरी सूरत को बिगाड़ने का षडयन्त्र रच रखा है! मैं अपने अधूरे चित्रों को पूरा करूँगा और वे प्रकाशित भी होंगे और कवितायें भी लिखूंगा। वे छपेंगी, समालोचनायें होंगीं। नाम होगा। परन्तु जितना अभी है उससे क्या अधिक नाम होजायगा? अभी कितना है।

तो भी कलम और कूंची का प्रयोग फिर आरम्भ करूँगा। समय और अवकाश ? अभी तो नहीं है। कभी मिलेगा। कभी तो मिलेगा।

शिवलाल ने कलम और कूंची को स्थगित कर दिया था। सितार तो महीनों से आवरे में बन्द पड़ा था। कबतक स्थगित रहेगा ? उसने सोचा।

परन्तु अवकाश और समय ! न मिला, न मिला। एक दिन जब थोड़ा सा मिला तब कलम की स्याही सूख सूख जा रही थी और कूंची के रवे टपक रहे थे ! न वह कुछ लिख पा रहा था और न एक सही रेखा खींच पा रहा था।

इतने में श्रीमती आ गईं। चेहरे पर या आंखों में कुड़कुड़ाहट का कोई लक्षण न था और न ओठों पर किंचित सिकुड़न। इतना सब होते हुये भी वहां कहीं भी मुस्कान भी न थी।

'क्या कर रहे हो ? एक क्षण ही मुझसे बातचीत करने के लिये निकाल लिया करो।' श्रीमती ने कहा।

अंगड़ाई ली, जमुहाई ली, पीछे की तरफ़ दौड़ने वाली ठोड़ी को आगे बढ़ाया, माथा टटोला और मन्त्री बोले, 'सार्वजनिक कार्यों के मारे एक क्षण की भी फ़ुर्सत तो नहीं मिलती। बुरी तरह फंसा रहता हूं।

'दफ्तर का तो कोई कागज तुम्हारे सामने इस समय है नहीं। क्या लिखने जा रहे थे ?

'एक कविता, परन्तु न तो भाव बनरहा है और न शब्द ही कलम की नोक से दब रहे हैं।'

'कविता का विषय क्या रखा है ?'

'विषय भी नहीं सोच पा रहा हूँ।' मन्त्री ने माथा खुजलाया !

'मूँग की दाल पर लिखो जो तुमको बहुत अच्छी लगती थी।' फीकी हँसी हँस कर श्रीमती ने कहा।

'वैसी ही कुड़कुड़ाओ और मुस्कराओ तो उसीपर कुछ सोचूंगा।'

'तो चलो उसी छोटे से साफ़ सुथरे घर में।'

'लेकिन फिर इस मन्त्री पद को कोई मूर्ख धर दबायगा।'

'अभी किसके हाथ में है?'

'तुम तो व्यङ्ग कर रही हो, मुस्करा नहीं रही हो। सौगन्ध है, कोई विषय बतलाओ, नहीं तो फिर कभी दाल मण्डी से दाल लेने नहीं जाऊँगा।'

श्रीमती की आंखें झलझला आईं। बोली, 'वे दिन भले थे।'

'कौन से दिन?' शिवलाल ने अन्यमनस्कता में पूछा।

'जब लेखक बड़ा था और मन्त्री छोटा।'

# शहीद इब्राहिमखाँ गार्दी

'इस क़ैदी को शाह के सिपुर्द कीजिये।'

अहमदशाह अब्दाली के दूत ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से युद्ध की समाप्ति पर कहा।

सन् १७६१ में पानीपत के युद्ध में मराठे हार गये थे। कई सरदारों के साथ मराठों का सरदार इब्राहिम गार्दी भी पकड़ लिया गया। वह अन्त तक लड़ता रहा था और घायल हो जाने के कारण पकड़ लिया गया था। घायल इब्राहिम गार्दी को नवाब शुजाउद्दौला के टोले में, जो अफ़गान शाह अहमदशाह अब्दाली की छावनी के भीतर ही था, पकड़ कर रख लिया गया। अवध का नवाब घायल सरदार का वध नहीं करना चाहता था, परन्तु अहमदशाह के रुहेले सलाहकारों और स्वयं अहमदशाह को इब्राहिमखाँ के नाम से घृणा थी। वह अकस्मात् शुजाउद्दौला के सिपाहियों के हाथ पड़ गया था। अहमदशाह को इब्राहिम के पकड़े जाने और शुजा के टोले में होने का समाचार मिल गया। इसलिये उसने इब्राहिम को अपने सामने पेश किये जाने के लिये शुजा के पास दूत भेजा।

शुजाउद्दौला इब्राहिम की उपस्थिति से इनकार न कर सका। उसने अनुरोध किया, 'इब्राहिमखाँ काफ़ी घायल हो गया है। अच्छा हो जाने पर पेश कर दूँगा।'

दूत ने अपने शाह का हठ प्रकट किया,—'उसको हर हालत में इसी पल जाना होगा।'

शुजा का प्रतिवाद क्षीण पड़ गया। फिर भी उसने कहा, 'सोचिये इब्राहिम मराठों के दस हज़ार सिपाहियों का सालार था। घायल हुआ। अब कैद में है। कम से कम इस वक्त तो नहीं बुलाया जाना चाहिये।'

दूत ने नहीं माना। उसको अहमदशाह अब्दाली का स्पष्ट आदेश था। शुजाउद्दौला को उस आदेश का पालन करना पड़ा।

[ २ ]

मराठों के प्रधान सेननायक सदाशिवराव भाऊ का सिर कट कर पहले ही आ चुका था। वह भी नितान्त घायल अवस्था में ही अब्दाली के सिपाहियों के हाथ लग सका था। बालाजी बाजीराव पेशवा का पुत्र विश्वासराव भी पानीपत की लड़ाई में उसी दिन मारा गया था। संध्या के पूर्व ही उसका सिर भी कटकर आ गया।

विश्वासराव का सौन्दर्य मृत्यु के सिर पर भी खेल रहा था। अध-मुँदी आँखें, स्वाभाविक अर्ध विस्फोत मुस्कान—मानो यमराज को भी मुग्ध कर लेने की ठान रही हों। उसके अनिर्वचनीय रूप की महिमा को सुनकर रक्त में सने हुये अनेक अफ़गान सरदार और सिपाही ठट के ठट बाँधकर जमा हो गये। उन्होंने अपने डेरों के सामने लड़ाई में मारे गये हिन्दुस्थानी सिपाहियों के मुण्डों के ढेर लगा रखे थे, जिनके समक्ष ये नाचकूद कर जशन मना रहे थे। विश्वासराव का सौन्दर्य हिन्दुस्थान भर में विख्यात था। उसके कटे हुये सिर को देखने के लिये वे उस जशन को छोड़कर दौड़े आये।

'क्या मनुष्य इतना सुन्दर हो सकता है!' उनकी बर्बरता बारबार प्रश्न कर रही थी।

वे चिल्ला उठे,—'हम हिन्दुओं के शाह को काबुल ले जायेंगे। इसकी लाश को हमेशा तेल में रखेंगे। उनके बढ़ते हुये हठ को देखकर अब्दाली के रुहेले सलाहकार ने अनुरोध किया, 'हटाइये इसको; फिकवा दीजिये कहीं।'

उसने यही सम्मति सदाशिवराव के शव के लिये भी पेश की। अहमदशाह ने मान लिया।

इसके बाद अहमदशाह के सामने इब्राहिम गार्दी लाया गया।

अहमदशाह ने पूछा—'तुम मराठों की दस पल्टनों के जनरल थे?'

उसने उत्तर दिया—'ज़रूर था।'

'पहले तुम फ्रांसीसियों के नौकर थे?'

'था; तभी तो गार्दी कहलाता हूं।'

'फिर हैदराबाद के निज़ाम के यहां नौकर हुये?'

'सही है।'

'तुमने निज़ाम की नौकरी क्यों छोड़ दी?'

'क्योंकि निज़ाम के रवैये को मैंने अपने उसूलके खिलाफ पाया।'

'तुम्हारे उसूल! तुमने फिरंगी ज़बान भी पढ़ी है?'

'जी हां।'

'मुसलमान होकर फिरंगी ज़बान पढ़ी! फिर मराठों की नौकरी की!! खैर। अब जो कुछ तुमने किया उस पर तुमको तोबा करनी चाहिये। तुमको शर्म आनी चाहिये।

घावों की परवाह न करते हुये इब्राहिम बोला—'तोबा और शर्म! आप क्या कहते हैं अफगान शाह! आपके देश में अपने मुल्क की मुहब्बत और खून देने वालों को क्या तोबा करनी पड़ती है? और, क्या उसके लिये सिर नीचा करना पड़ता है?'

'तुम जानते हो कि किसके सामने हो ? किससे बातें कर रहे हो ?' अहमदशाह ने तेज़ होकर कहा।

'जानता हूं। और, नहीं भी जानता हूँगा तो जान जाऊँगा। पर यह यकीन है कि आप खुदा के फरिश्ते नहीं हैं।'

'मैं इतनी बड़ी फतह के बाद गुस्से को नहीं आने देना चाहता। ताज्जुब है, मुसलमान होकर तुमने जिन्दगी को इस तरह बिगाड़ा !'

'तब आप यह जानते ही नहीं कि मुसलमान कहते किसको हैं। जो अपने मुल्क के साथ घात करे, जो अपने मुल्क को बरबाद करने वाले परदेसियों का साथ दे, वह मुसलमान नहीं।'

'मुझको मालूम हुआ है, तुम फिरंगियों के कायल रहे हो। उनकी शागिर्दी में ही तुमने यह सब सीखा है। क्या तुम नमाज़ पढ़ते हो ?'

'हमेशा; पांचों वक्त।'

अहमदशाह के चेहरे पर व्यङ्ग भरी मुस्कराहट आई और आँखों में वध की क्रूरता। बोला, 'फिरंगी या मराठी ज़बान में नमाज़ पढ़ते होगे ! खुदा को राम कहते होगे !!'

इब्राहिम ने घावों की पीड़ा दबाते हुये कहा, 'क्या खुदा अरबी, फारसी या पश्तो ज़बानों को ही समझता है ? क्या वह मराठी या फ्रांसीसी को नहीं जानता ? क्या राम खुदा नहीं ? और क्या खुदा राम नहीं है ?'

अहमदशाह अब्दाली की नाक में नासूर था। उसमें से फुफकार निकल पड़ी।

बोला, 'क्यों कुफ्र बकता है ! तोबा कर; नहीं तो टुकड़े-टुकड़े कर दिये जायेंगे।'

'मेरे इस तन के टुकड़े हो जाने से रूह के टुकड़े तो होंगे नहीं।' इब्राहिम ने दृढ़ स्वर में कहा।

घायल इब्राहिम के ठंडे स्वर से अहमदशाह की क्रूरता कुण्ठित हुई। एक क्षण सोचने के बाद बोला, 'अच्छा, हम तुमको तोबा करने के लिये वक्त देते हैं। तोबा कर लो तो हम तुमको छोड़ देंगे। अपनी फौज में अच्छी नौकरी भी देंगे। तुम फिरंगी तरीके पर हमारी फौज के कुछ दस्ते तैयार करो।'

कराह को दबाये हुये इब्राहिम के ओठों पर एक रीनी–झीनी हँसी आ गई। इब्राहिम अहमदशाह के उस खिलवाड़ को समाप्त करना चाहता था।

उसने कहा, 'अगर छूट पाऊँ तो पूना में ही फिर पल्टनें तैयार करूँ और फिर इसी पानीपत के मैदान में उन अरमानों को निकालूँ जिनको निकाल नहीं पाया और जो मेरे कलेजे में धधक रहे हैं।'

'अब समझ में आ गया—तुम असल में बुतपरस्त हो।'

'ज़रूर हूँ, लेकिन मैं ऐसी बुत को पूजता हूँ जो दिल में बसी हुई है और ख्याल में मीठी है। जिन बुतों को बहुत से हिन्दू पूजते हैं और आप लोग भी, मैं उनको नहीं पूजता।'

'हम लोग भी! खबरदार!!'

'हां, आप लोग भी। मरे हुये सिपाहियों के सिरों के ढेर जो हर तम्बू के सामने लगाये गये हैं और जिनके सामने आपके पठान और रुहेले सिपाही नाच नाचकर जशन मना रहे हैं, वह सब क्या है? क्या यह बुतपरस्ती नहीं? हिन्दुओं की और आप लोगों की बुतपरस्ती में सिर्फ इतना ही फर्क है कि जिन बुतों को वे पूजते हैं उनसे खून नहीं बहता और न बदबू आती है।'

'हूं! तुम बहुत बदज़बान हो!! तुम्हारा भी वही हाल किया जायगा जो तुम्हारे सदाशिवराव भाऊ का हुआ है।'

पीड़ित, चकित, इब्राहिम के मुँहसे निकल पड़ा,—'क्यों! उनका क्या हुआ?'

उत्तर मिला,—'मार दिया गया, सिर काट लिया गया !'

'ओफ़ !' घायल इब्राहिम ने दोनों हाथों से सिर थाम कर कहा।

अब्दाली को उसकी पीड़ा रुची। बोला, 'और तुम लोगों का वह खूबसूरत छोकरा विश्वासराव भी मारा गया।'

इब्राहिम की बुझती हुई आँखों के सामने और भी अंधेरा छा गया। उसने कम्पित, कुपित स्वरमें कहा, 'विश्वासराव ! विश्वासराव !! मेरे मुल्क का नाज़ !!! मेरे सिपाहियों के हौसले का ताज !!!! ओफ़' इब्राहिम गिर पड़ा !

अहमदशाह उसके तड़पने पर प्रसन्न था। उसकी निर्ममता ने सोचा, शहीद को जीत लिया। इब्राहिम ज़रा सा उठकर भरभराते हुये स्वर में बोला, 'पानी !'

अब्दाली कड़का,—'पहले तोबा कर।'

जहाँ के तहाँ पड़कर इब्राहिम ने कहा, 'तोबा ! शहीद कहीं तोबा करता है ? तोबा करें वे लोग जो कैदियों, घायलों और निहत्थों का क़तल करते हैं।'

अब्दाली से नहीं सहा गया ! इब्राहिम भी नहीं सह पा रहा था।

अब्दाली ने उसके टुकड़े टुकड़े करके वध करने की आज्ञा दी।

एक अंग कटने पर इब्राहिम की चीख में से निकला, 'मेरे ईमान पर पहली नियाज़।' दूसरे पर क्षीण चीख में से,—'हम हिन्दू मुसलमानों की मिट्टी से ऐसे सूरमा पैदा होंगे जो वहशियों और जालिमों का नाम निशान मिटा देंगे।'

फिर अन्त में मराठों के ब्रिग्रेडियर जनरल इब्राहिमखाँ गार्दी के मुँह से केवल एक शब्द निकला—'अल्लाह—' जिसको फ़रिश्तों ने पंखों और इतिहास के पन्नों ने सावधानी के साथ अपने आँसुओं में छिपा लिया।

# मुहम्मदशाह का न्याय

रामजी नाम माता-पिता ने दिया था। इसी नाम से वह मुगल-सम्राट मुहम्मदशाह के दफ़्तर में नौकर हुआ। बाप दूकानदारी करता था, बेटा फारसी पढ़कर मुंशी हो गया।

नौकर होने के कुछ समय पीछे कबाब, कोफ़्ता और सुरा—सुन्दरी के आकर्षण ने रामजी को खुदाबख्श बना दिया।

रामजी या खुदाबख्श की हिन्दू-पत्नी मुसलमान नहीं हुई और न उसकी लड़की। खुदाबख्श ने तीन चार साल अनवरत परिश्रम किया—अर्थात जितना समय वह दफ़्तर और सुरा—सुन्दरी से बचाकर दे सकता था उतने समय में—नाना प्रकार के उपाय किये परन्तु न तो पत्नी ने इस्लाम कबूल किया और न लड़की ने। लड़की का नाम तारा था। लड़की को सुहावना फारसी नाम अख्तर खातून दिये जाने का चमत्कार पूर्ण ( ! ) प्रलोभन भी दिया गया, पर तारा ने अख्तर खातून बनने से बिलकुल इन्कार कर दिया।

खुदाबख्श ने प्रधान काजी मुस्तफीदखां के सामने लिखी हुई फरियाद पेश की।

'.........जब मैंने अपना मज़हब बदला तब मेरी लड़की तारा नाबालिग थी। इसलिये मेरे मुसलमान होते होते ही वह भी इस्लामी क़ानून के अनुसार मुसलमान हो गई। उसको इस मामले में हां या ना करने का कोई अधिकार ही न था और न है।'

काजी ने लड़की को तलब किया। लड़की सकपकाई हुई काजी के सामने आई; परन्तु सामने आते ही उसकी सकपकाहट समाप्त हो गई। उसने देखा काजी एक लम्बी दाढ़ी वाला आदमी ही तो है।

लड़की से कहा गया, 'तुम्हारे बाप ने अपना धर्म बदल दिया, इसलिये तुम्हारा भी धर्म बदल गया।'

लड़की जवान थी और सुन्दर थी। उसको प्रलोभन दिया गया, 'अख्तर खातून तुम्हारा नाम हो गया है और तुम्हारी शादी किसी रूप-सरूप वाले दौलतमन्द सरदार के साथ हो जायगी।'

लड़की की आँख में आग-सी जल उठी। बोली, 'मैं क्या कोई भेड़-बकरी हूँ जिसे बाप चाहे जहां काट-कूटकर फेंक दे, या खाजायँ ?'

काज़ी यों ही मानने वाला न था। शरई-क़ानून स्पष्ट था।

काज़ी ने कहा, 'तुम रजस्वला कब हुई ?'

लड़की ने लाज-संकोच को एक किनारे रखकर उत्तर दिया, बाप के धर्म-परिवर्तन के तीन महीने बाद।'

लड़की चूक गई। वह शरई-क़ानून को नहीं जानती थी। यदि लड़की पिता के धर्म-परिवर्तन के समय रजस्वला नहीं हुई थी तो इस्लाम-क़ानून के अनुसार वह भी मुसलमान हो गई!

काज़ी ने फैसला दिया, 'लड़की मुसलमान है। उसे अपने को हिन्दू कहने का कोई अख्तियार नहीं।'

लड़की रो पड़ी। उसके रोने का कोई प्रभाव दिल्ली के न्यायाधीश पर नहीं हुआ और न अन्य काज़ियों पर जो क़ानून की छानबीन और प्रधान काज़ी की सहायता के लिये वहां इकट्ठे हुये थे।

लड़की ने आँसुओं को जलाकर भर्राये हुये कण्ठ से अपना निर्णय सुनाया—

'मैं हिन्दू हूँ और हिन्दू ही रहूँगी।'

इस पर लड़की को कैदखाने में भेज दिया गया।

( २ )

दिल्ली का एक बाज़ार उर्दू-बाज़ार कहलाता था। तारा के नातेदार उर्दू-बाज़ार में दूकानदारी करते थे। वहीं उसकी माँ रहती थी। माँ के क्रन्दन पर उर्दू-बाज़ार के दूकानदारों के कलेजे कोयला होने लगे। उन्होंने दूकानें बन्द कर दीं और हाहाकार करते हुये बादशाह मुहम्मदशाह के पास पहुँचे। यह हाहाकार और पुकार बादशाह के 'झरोखे' के नीचे केन्द्रित हुई। बादशाह ने झरोखे पर 'दर्शन' दिये। फरियाद को सुनकर उसने जाँच के लिये मामले को मीरजुमला, अपने 'सदरूसदर' के सुपुर्द किया। सदरूसदर ने महल के भीतर ही जाँच की। मीरजुमला ने राय दी कि रजस्वला होना ही बालिग़ होने का प्रमाण नहीं है और इस्लाम का क़ानून कहता है कि नाबालिग़ सन्तान ही पिता के मुसलमान होने पर अपने आप मुसलमान हो सकती है। इस पर काज़ी और मुफ़्ती बिगड़ गये। बड़े गरम हुये। शरह के एक एक शब्द पर बहस हुई। बादशाह ने अन्तिम निर्णय देने तक के लिये तारा को एक हिन्दू की अभिभावकता में रख दिया।

अब खड़ा हुआ पूरा बवाल!

दूसरे दिन शुक्रवार था—जुमें की नमाज़ का दिन। पचास-साठ हज़ार मुसलमान जहांनुमा मस्जिद में इकट्ठे होगये। उन्होंने इतना हो-हल्ला और हायतोबा मचाया कि बादशाह का खुतबा ही न पढ़ा जा सका—उन्होंने पढ़ने ही नहीं दिया। विपद के बादल उठते देखकर हिन्दुओं ने दूकानें बन्द करदीं—हड़ताल करदी, जो निस्सहायों, दलितों और त्रस्तों का एकमात्र हथियार रहा है। परन्तु दो-तीन अभागे हिन्दू उस रौरे के समय मस्जिद के सामने से निकल पड़े। भीड़ ने

तुरन्त उनको पकड़कर, खतना करके, मुसलमान बना डाला—ग़नीमत हुई कि उनके सिर धड़ पर बने रहने दिये ! जब मुहम्मदशाह ने इस विकट भम्भड़ का हाल सुना तब उसने दूसरा निर्णय दिया—

'लड़की को हिन्दू की हिफ़ाजत से हटाकर कैदखाने में भेज दो।'

लड़की कैदखाने में भेज दी गई।

( ३ )

गर्मियों के दिन थे। सन् १७२५। परन्तु सन् सम्वत् या गर्मी-सर्दी का चक्र निरन्तर है। मनुष्य का हृदय बदल जाय तो गर्मी-सर्दी और सन् सम्वत् के पैमाने कुछ मूल्य रखते हैं; अन्यथा जैसा कल था वैसा आज।

तारा कैदख़ाने में एक टाट पर बैठी हुई थी। उसको मालूम था कि उद्धार की घड़ी आने वाली है।

कैदख़ाने में जल्लाद आया। उसके हाथ में तेज़ खञ्जर था। लड़की ने पहचान लिया। उठकर खड़ी हो गई।

'क्या है ?' लड़की ने दबे गले से व्यर्थ प्रश्न किया।

जल्लाद ने कहा, 'तैयार हो जाओ। बादशाह का हुकुम है। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।'

'मैंने कोई अपराध नहीं किया है।'

'तुम्हीं तो सारे फ़साद की जड़ हो। तुम अगर ज़िन्दा रहीं तो सारी दिल्ली ख़ाक में मिल जायगी।

'बादशाह का यही न्याय है ?'

'बिलकुल यही। हुकुम मेरी जेब में है। सुनाऊँ ?'

'मुझको नहीं सुनना है। परन्तु मैं जल्लाद के हाथ से नहीं मरना चाहती।'

'यह लो! तुमको मारने के लिये शाहंशाह या शाहज़ादा यहाँ आवेंगे !!'

लड़की ने प्रार्थना की, 'मैं हिन्दू-स्त्री हूं। मरना जानती हूँ। तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। अपना खञ्जर मुझको दे दो। अपने हाथ से छाती को छेद लूँगी।'

जल्लाद हँसा।

बोला, 'मुझको इतना बड़ा बेवकूफ़ समझ लिया है तुमने! खञ्जर तुम्हारे हाथ में दे दूँ और मैं निहत्था हो जाऊँ, जिसमें तुम जल्लाद बन जाओ और मेरी छाती में खञ्जर समा जाय!! हिश!!!'

लड़की ने कहा, 'हूं!' और उसने इतनी ज़ोर से उछलकर कैदखाने की पथरीली दीवार से अपना सिर टकराया कि सिर फट गया। वह गिर पड़ी।

जल्लाद ने नाड़ी देखी। तारा समाप्त हो गई थी।

लड़की मुसलमानी रीत–रिवाज़ के अनुसार दफ़ना दी गई।

मुहम्मदशाह के न्याय ने तख्तताऊस को बरकत दी।

# छंद किसको ?

वह चुप बैठा था। परन्तु नेत्र और कान उसके सतर्क थे।

भद्रावती के राजतन्त्र का चुनाव होना था। पाँच वर्ष पहले हेमेन्द्र को चुना गया था। उसके समय में कृषि, गोधन, शासन-व्यवस्था, यज्ञ इत्यादि धर्म कार्य कोई भी समुन्नत न हो सके। हेमेन्द्र विवादों को बढ़ाने की प्रेरणा दे सकता था, उनको शान्त करके जनपद के विकास मार्ग को स्वच्छ करने की प्रतिभा उसमें न थी।

अबकी बार वह फिर राजन्य चुने जाने के लिये दौड़धूप कर रहा था। पौर जानपद के मण्डप में बड़ी चहल-पहल थी। वितान सजा हुआ था। तोरण, बन्दनवार, केले के खम्बे, घट-कलश सब यथास्थान, मानो कोई यज्ञ होने जा रहा हो।

आसन प्रज्ञापक ने छन्ददाताओं* को आसनें दीं। बीच में ऊँचे मञ्च पर पौर जनपद सभा का प्रधान चन्दन चर्चित और श्वेत परिधान से भूषित बैठा था। उसके निकट रङ्ग-बिरङ्गी शलाकाओं† के व्यवस्थित ढेर लगे हुये थे। शलाका-संग्रहक प्रधान के पास ही मञ्च पर बैठा था।

---

* उस युग में वोटर को छन्ददाता और वोट को छन्द कहते थे।

† शलाकायें आजकल के बैलट का काम करती थीं। ये काठ की होती थीं।

मण्डप में देवदत्त एक ओर चुपचाप परन्तु सतर्क आसीन था।

हेमेन्द्र अपने पक्ष में छन्द बढ़वाने के निमित्त भद्रावती नगरी और भद्रों के जनपद के प्रमुखों का पीछा सभा-मण्डप में भी नहीं छोड़ रहा था। कोई कोई छन्ददाता उसको छन्ददान का वचन दे रहे थे, कोई मुस्कराकर रह जाते थे और कोई कोई तिरछी आंखें करके मुँह फेर लेते थे, परन्तु हेमेन्द्र का प्रयत्न दृढ़ और सतत था।

भद्रावती नगरी के साधारण जन बड़ी देर से चुनाव की क्रिया और उसका परिणाम देखने के लिये कुतूहलवश मण्डप से बाहर इधर उधर घूम रहे थे। पांच वर्ष उपरान्त यह घड़ी आई थी। पाँच वर्ष उपरान्त फिर आवेगी। नगरजन उत्सुकता और थकावट के बीच में झूल से रहे थे। राजन्य पद के छन्दाभिलाषी दो थे। एक हेमेन्द्र, दूसरा चुप्पा देवदत्त।

( २ )

मण्डप में आसन से एक छन्ददाता ने खड़े होकर कहा, 'मेरा अनुरोध है कि अबकी बार आर्य हेमेन्द्र को फिर राजन्य पद से सुशोभित किया जाय। उनको ही फिर राजन्य मनोनीत किया जावे।'

दूसरा खड़ा होकर बोला, 'मैं समर्थन करता हूं।'

प्रधान ने अपने लम्बे श्मश्रु पर हाथ फेरते हुये, खनकते हुये स्वर में कहा, 'आर्य हेमेन्द्र का कोई विरोध करना चाहता है ? यदि करना चाहता है तो उसके पक्ष का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जावे।'

तुरन्त एक ने देवदत्त का प्रस्ताव किया और दूसरे ने समर्थन।

प्रधान ने बतलाया, 'ये दो नाम हमारे शास्त्रोक्त नियमों के अनुसार आगये हैं। और कोई नाम ? किसी अन्य के लिये प्रस्ताव ?'

मण्डप में सन्नाटा छा गया। मण्डप के बाहर खड़े हुये भद्रावती के जन गर्दनें उचकाकर सचिन्त इधर उधर देख उठे। प्रधान को विधान के अनुसार कुछ क्षण चुपचाप प्रतीक्षा करनी थी।

उसी समय उपस्थित जनता में किसी के गिरने का शब्द हुआ। दस बारह वर्ष का एक निरीह सा बालक, थकावट के मारे हो या प्यास के मारे हो, गिर पड़ा। जनता चचंल हो गई। मण्डप में आसीन छन्ददाता भी उठ कर बाहर आने को थे कि जन समूह में से सुनाई पड़ा—कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, हम उपचार कर रहे हैं; आप अपना काम करिये।'

छन्ददाता अपने अपने स्थान पर आ बैठे। देवदत्त अपना आसन छोड़कर जनता की भीड़ में चला गया। जब कोई तीसरा नाम प्रधान के सामने नहीं लिया गया, तब प्रधान ने छन्दशलाकाओं पर आँख घुमाते हुये शलाका-संग्रहक को संकेत किया। शलाका-संग्रहक ने हरे रङ्ग की गिनी हुई कुछ शलाकायें लीं और उतनी ही लाल रङ्ग की। वह जानता था कि मण्डप में कुल कितने छन्ददाता बैठे हैं।

शलाका संग्रहक और छन्ददाताओं ने देखा कि देवदत्त मण्डप में नहीं है, उस बालक की परिचर्या के लिये भीड़ में चला गया है, जिसका उपचार जनता के कुछ लोग कर रहे थे।

उन सब ने हेमेन्द्र की उत्सुक मुद्रा को भी देखा जिससे राजन्य पद प्राप्ति की लालसा टपकी पड़ रही थी। उसकी आँखों में छन्द-दाताओं के प्रति बड़ा अनुनय था, बड़ी भीख—छन्द मुझको देना; इन पाँच वर्षों में यदि जनपद के लिये उतना नहीं कर सका, तो आगे अवश्य करूँगा।

प्रत्येक छन्ददाता के हाथ में दो दो शलाकायें—एक हरे रङ्ग की एक लाल रङ्ग की—शलाका-संग्रहक को देनी थीं। वह देता जाता था। सब शलाकाओं का वितरण होगया, तब प्रधान ने उच्च स्वर में कहा, 'जिसको आर्य हेमेन्द्र के पक्ष में छन्ददान करना हो वह हरी शलाका संग्रहक को लौटा दे; और जिसको अपना छन्द आर्य देवदत्त के पक्ष में देना हो वह लाल शलाका संग्रहक को दे दे। दूसरी

शलाका अपने पास रक्खे रहे। जब परिणाम की घोषणा, शलाकाओं की गणना के उपरान्त, हो जावे, तब शेष शलाकायें मञ्च पर रख दी जावें।'

देवदत्त अब भी मण्डप में न आ सका। हेमेन्द्र की आँखों में अब भी वही भीख थी।

शलाका-संग्रहक ने शलाकायें एकत्र कीं। प्रधान ने उनको गिना। देवदत्त को पंचानवे छन्द मिले, हेमेन्द्र को पाँच। शलाकाओं का यही अनुपात रहा। हरी शलाकाओं का छोटा-सा ढेर प्रधान के सामने।

प्रधान ने खड़े होकर तीन बार घोषणा की, 'आर्य देवदत्त भद्रावती जनपद के राजन्य पांच वर्ष के लिये मनोनीत हुये।'

देवदत्त उस समय भी बालक का उपचार कर रहा था। हेमेन्द्र नीचा मुँह किये हरी शलाकाओं के उस छोटे से ढेर पर आँख गड़ाये हुये था।